वर्ष–4, अंक–2
इंटरनेट संस्करण : 89

पत्रिका गर्भनाल

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

ISSN 2249–5967
अप्रैल 2014

पत्रिका गर्भनाल

वर्ष-4, अंक-2 (इंटरनेट संस्करण : 89)
अप्रैल 2014

सम्पादकीय सलाहकार
गंगानन्द झा

परामर्श मंडल
वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया
अनिल जनविजय, रूस
अजय भट्ट, बैंकाक
देवेश पंत, अमेरिका
उमेश ताम्बी, अमेरिका
आशा मोर, ट्रिनिडाड
डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत
डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक
सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग
डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग
डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग
प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार
संजीव जायसवाल

सम्पर्क
डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,
जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.
ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र
सुनील दीपक, इटली

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी सुषमा शर्मा के लिए बॉक्स कारूगेटर्स एण्ड ऑफसेट प्रिंटर्स, 14-बी, आई सेक्टर, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल द्वारा मुद्रित एवं डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी, जे.के. रोड, भोपाल से प्रकाशित.

>>4
हम न मरब मरिहैं संसारा...

>>12
अमेरिका के स्कूलों में धर्म

>>19
सिंगापुर में 'लिटिल इंडिया'

>>33
चेतना

इस अंक में

अपनी बात : गंगानन्द झा 2

स्मृति लेख : डॉ. ओम निश्चल 4

मन की बात : सारा प्राइस-अरोरा 12

संस्मरण : यशवन्त कोठारी 14

जन्नत की हकीकत : रमेश जोशी 16

सिंगापुर की डायरी : सन्ध्या सिंह 19

चीन की डायरी : डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 21

परख : प्रभु जोशी 23

नजरिया : उदयन वाजपेयी 25

हमारा समय : ध्रुव शुक्ल 27

रम्य-रचना : सुधा दीक्षित 29

अनुवाद : प्रोफेसर अम्लान दत्त 33

चिन्तन : ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव 35

व्याख्या : मनोज कुमार श्रीवास्तव 39

मंथन : भूपेन्द्र कुमार दवे 44

पंचतंत्र : 46

महाभारत : 47

वेद की कविता : प्रभुदयाल मिश्र 49

गीता-गीत : परेश दत्त द्वारी 50

कविता : रवि पेरी 51

सुप्रभा गुप्ता 52

विजय कुमार सिंह 53

सुशान्त सुप्रिय 54

प्रो. डॉ. पुष्पिता अवस्थी 55

अनिल के. प्रसाद 56

स्वदेश राना 58

शायरी की बात : नीरज गोस्वामी 60

ख़बर : 61

आपकी बात : 63

आख़िरी बात : आत्माराम शर्मा 65

सोलहवें भारतीय संसद के गठन के लिए लोकसभा के कुल ५४३ सदस्यों के चुनाव के लिए साधारण निर्वाचन की प्रक्रिया शुरू हो गई है। इस मास की सात तारीख से शुरू होकर बारह मई के बीच देश के विभिन्न क्षेत्रों में नौ चरणों में मतदान की प्रक्रिया सम्पन्न होगी। सोलह मई को मतगणना और परिणामों की घोषणा हो जाने के बाद सोलहवीं लोकसभा का औपचारिक गठन होगा।

भारत की प्रथम लोकसभा के लिए चुनाव २५ अक्टूबर १९५१ ई. और २१ फरवरी १९५२ ई. के बीच आयोजित हुए थे। उस समय ३१४ निर्वाचन क्षेत्रों से एक सदस्य, ८६ से दो तथा एक क्षेत्र से तीन सदस्य चुने जाते थे। सन १९६० ई. में बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र समाप्त कर दिए गए।

प्रथम निर्वाचन के समय जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में काँग्रेस एकमात्र प्रभावी अखिल भारतीय एवम् राष्ट्रीय राजनीतिक दल था। अक्टूबर १९५१ ई. में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ का गठन हुआ था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर की रिपब्लिकन पार्टी, आचार्य कृपलानी की किसान मजदूर पार्टी तथा राममनोहर लोहिया एवम् जयप्रकाश नारायण की समाजवादी पार्टी के अलावे भारतीय साम्यवादी पार्टी भी थी। स्वाधीन देश की राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया के फलस्वरूप राजनीतिक परिदृश्य में निरन्तर बदलाव होता रहा है। इस बदलाव के फलस्वरुप राजनीतिक दलों का उभड़ना और लुप्त होना एक निरन्तर प्रक्रिया बन गई है। बदलाव की इस प्रक्रिया को चार्ल्स डार्विन के जैव विकासवाद की रोशनी में जीवों की विभिन्न प्रजातियों के विकास और लोप के तर्ज पर समझा जा सकता है। राजनीतिक दल अपनी गतिविधि से परिवेश को बदलते हैं और बदला परिवेश उन पर अनुकूलन की माँग करता है। नियमित अन्तराल पर होने वाले निर्वाचन इस दलों को प्रामाणिकता देते हैं या इतिहास के कचरे की टोकरी में डाल देते हैं।

निर्वाचन प्रक्रिया के फलस्वरूप देश के राजनीतिक सह-सामाजिक परिदृश्य में लगातार मंथन होता रहा है। इसके असर में निर्वाचन प्रक्रिया एवम् समाज दोनों का रूपान्तर होता रहा है। निर्वाचन के फलस्वरूप समाज में नए समीकरण उभड़ते रहे हैं और इन नए समीकरणों से निर्वाचन प्रक्रिया के स्वरूप एवम् परिणाम में बदलाव आते रहे हैं। भारत माता की पहचान, उसकी विविधता और जटिलता की निशानदेही करने में इन निर्वाचनों ने महत्वपूर्ण दूरगामी और प्रभावी भूमिका का निर्वहन का है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू चुनावी सभाओं के मंच का इस्तेमाल जनता को शिक्षित करने के लिए किया करते थे। इन चुनावी प्रक्रिया के द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों की पृथकतावादी रुझानों की पहचान आंचलिक आकांक्षाओं के रूप में बदलती रही और इन क्षेत्रों के नागरिक राष्ट्र की मुख्यधारा में सहजता से सम्मिलित होते रहे हैं।

इसका प्रतिफलन नए राजनीतिक समीकरणों के उभड़ने और नए राजनीतिक दलों के गठन में होता रहा है। तब से लेकर लगातार कितने ही अखिल भारतीय एवम् क्षेत्रीय राजनीतिक दल उभड़ते और मिटते रहे हैं। इसे सामाजिक सोच में हो रहे परिवर्तनों का नतीजा भी समझा जा सकता है। कहा जा सकता है कि बैलॉट बॉक्स वह कसौटी है जो किसी सोच की प्रासंगिकता, औचित्य और उपयोगिता को प्रामाणिकता प्रदान कर और अन्य को अस्वीकार कर समाज के क्रमविकास की दिशा एवम् दशा तय करती है।

हमारे देश की मतदान की प्रक्रिया का क्रम विकास हुआ है। प्रारम्भ में संसद एवम् राज्य विधान सभाओं के लिए साधारण निर्वाचन साथ-साथ आयोजित हुआ करते थे। हर उम्मीदवार के लिए एक मतदान पेटी होती थी, जिसमें मतदान-पत्र डालना होता था। किसी निर्वाचन क्षेत्र का नतीजा उस क्षेत्र में चुनाव प्रक्रिया पूरी होने के साथ ही मतगणना कर घोषित कर दिया जाता था।

बाद में मतदान प्रक्रिया के विवरण में परिवर्तन हुआ। मतदान-पत्र पर उम्मीदवारों के

सार्वजनिक मताधिकार लागू करने वाले देशों में भारत अनन्य है। इसके औचित्य पर बहुत से सवाल उठाए गए थे। समय के साथ इन सवालों के साथ जूझते हुए भारतीय राष्ट्र का स्वरूप विकसित होता जा रहा है।

नाम और चुनाव चिह्न अंकित रहते और मतदाता अपनी पसन्द के उम्मीदवार के चुनाव चिह्न के सामने मोहर लगाकर मतदान पेटी में उसे डाल देता था। दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन चुनावी परिणाम की घोषणा करने की तिथि में हुआ। सभी क्षेत्रों में मतदान समाप्त होने के बाद ही एक साथ नतीजे घोषित होने लगे, ताकि किसी क्षेत्र का मतदान अन्य क्षेत्र के नतीजे से प्रभावित न हो।

सार्वजनिक मताधिकार (यानी देश के सभी बालिग नागरिकों को समान मताधिकार का अधिकार होना) लागू करने वाले देशों में भारत अनन्य है। इसके औचित्य पर बहुत से सवाल उठाए गए थे। समय के साथ इन सवालों के साथ जूझते हुए भारतीय राष्ट्र का स्वरूप विकसित होता जा रहा है। निर्वाचन प्रक्रिया में भी निरन्तर रूपान्तर होता जा रहा है। गलत होने का खतरा उठाए बगैर कहा जा सकता है कि गत बासठ सालों के दौरान निर्वाचन की विश्वसनीयता, पारदर्शिता तथा मतदाताओं की सही भागीदारी में घात-प्रतिघात द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर उन्नति होती रही है। नतीजे में सामाजिक परिवर्तन के लिए बुलेट बनाम बैलॉट की बहस का जवाब बैलॉट के पक्ष में उभड़ा है।

निर्वाचन के उम्मीदवारों के लिए चुनाव प्रचार से अधिक महत्वपूर्ण बूथ मैनेजमेंट हुआ करता था। बूथ दखल करना बूथ मैनेजमेंट कहलाता था। इसकी रणनीति बड़ी दक्षता के साथ बनाई जाती। फलस्वरूप बाहुबलियों का वर्चस्व कायम होने की गुञ्जाइश पैदा होती रही। मतदान के समय खून-खराबा होना अनहोनी नहीं थी। वोट बैंक की राजनीति विकसित हुई और थोक में वोट दिला पाने वाले ठीकेदार उभड़े। निष्पक्ष चुनाव जगह-जगह प्रहसन हो गया।

सिलसिलेवार निर्वाचनों में कांग्रेस का एकाधिकार कम तो हो रहा था, पर शासक दल की भूमिका से उसको हटाने के लिए विरोधी दलों को बार-बार रणनीति बदलनी पड़ी थी। सन् १९७१ ई. के साधारण निर्वाचन में विरोधी दलों ने 'ग्रैण्ड ऐलायन्स' के नाम का गठबन्धन किया था। जीत का पूरा भरोसा रहने के बावजूद कांग्रेस की हार नहीं हुई। हताशा में एक व्याख्या यह भी दी गई कि यह मतदान-पत्र में मोहर लगाने वाली स्याही की करामात है। इन्दिरा गांधी ने रूस से वह खास टेकनॉलॉजी से बनी स्याही मँगाई थी। इसकी खासियत थी कि मतदान पत्र पर चाहे जहाँ भी लगाई जाए, उछलकर कांग्रेस के चुनाव चिह्न के सामने अंकित हो जाती थी। लेकिन यह बात कुछ जम नहीं पाई।

सत्तर और अस्सी के दशक में समाज में हो रहे आलोड़न का निर्वाचन प्रक्रिया पर प्रतिफलन होता रहा। समाज का कमजोर और वंचित वर्ग मतदान केन्द्र तक अबाध पहुँच बनाने में कामयाब हुआ था। इतिहास के लिए निर्वाचन प्रक्रिया को विश्वसनीयता, सम्माननीयता और प्रामाणिकता से अलंकृत करने के अनुकूल उर्वर जमीन उपलब्ध थी। नब्बे के दशक के प्रारम्भ में तत्कालीन प्रमुख निर्वाचन आयुक्त श्री टी.एन. शेषन की पहल पर मतदान पहचान पत्र और एलेक्ट्रॉनिक बैलॉट बॉक्स लागू करने के साथ चुनाव आचार संहिता का कड़ाई से पालन होना प्रारम्भ हुआ। फलस्वरूप मतदान की प्रक्रिया में विश्वसनीयता कायम होने लगी और नतीजे जमीनी हकीकत की सही तस्वीर होने लगे। अब मतदाता ही मतपेटी में अपनी पसन्द अंकित करता है, कोई अन्य नहीं। इसलिए निर्वाचन प्रक्रिया में अपराधी तत्वों की भूमिका में प्रभावकारी स्तर पर कमी आई है।

चलते-चलते : सन १९७७ का संसदीय निर्वाचन भारतीय राजनीति की आमूल परिवर्तनकारी समारोह माना जाता है। अन्ततोगत्वा कांग्रेस सत्ताच्युत हो गई थी। उसके बाद कुछ भी पहले जैसा नहीं रहा था। इस नतीजे में एक अनोखी बात थी कि विस्तृत हिन्दी भाषी क्षेत्र में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली थी दूसरी ओर दक्षिणी राज्यों में कांग्रेस को बहुमत मिला था, लोग भौंचक रह गए थे। ऐसा फिर कभी नहीं हुआ। पण्डितों को व्याख्या करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी थी। एक अनोखी टिप्पणी अंगरेजी के प्रतिष्ठित पाक्षिक लिंक की थी- People voted against congress and expected it to win. उन्होंने सोचा था कि हमने भले कांग्रेस को वोट नहीं दिया, जीतेगी तो कांग्रेस ही।

एक अवलोकन था कि बूथ प्रबन्धन और दखल करने वाले बूथ के ठीकेदार अब तक कांग्रेस के लिए काम करते थे, उन्होंने इस बार पाला बदल लिया है।■

ganganand.jha@gmail.com

डॉ. ओम निश्चल

१५ दिसंबर १९५८ को ग्राम-हर्षपुर, जिला-प्रतापगढ़, उत्तरप्रदेश में जन्म। हिंदी एवं संस्कृत में एम.ए., पीएच-डी, पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। प्रकाशित कृतियाँ : कविता संग्रह- शब्द सक्रिय हैं, आलोचना- द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी : सृजन और मूल्यांकन, साठोत्तरी हिंदी कविता में विचारतत्व, कविता का स्थापत्य, भाषा में बह आई फूलमालाएँ: युवा कविता के कुछ रूपाकार। संपादन- द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी रचनावली (तीन खंडों में), अधुनांतिक बांग्ला कविता (समीर रायचौधुरी के साथ), तत्सम शब्दकोश, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : साहित्य का स्वाधीन विवेक, जियो उस प्यार में जो मैंने तुम्हें दिया है : अज्ञेय की प्रेम कविताएँ। 'आश्चर्य की तरह खुला है संसार : अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताएँ', 'हत्यारे उतर चुके हैं क्षीरसागर में : लीलाधर मंडलोई की कविताएँ', 'लीलाधर मंडलोई : प्रतिनिधि कविताएँ' तथा कुंवर नारायण पर आलोचनात्मक निबंधों की दो खंडों की पुस्तक 'अन्वय' एवं 'अन्विति' व धूमिल के व्यक्तित्व-कृतित्व पर 'हमारे समय में धूमिल' पुस्तक का संपादन। हिन्दी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत। सम्प्रति - इलाहाबाद बैंक, नई दिल्ली मंडल में वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा)। संपर्क : omnishchal@gmail.com

स्मृति लेख

हम न मरब मरिहैं संसारा...

> पिछले दिनों हिंदी के कई महत्वपूर्ण लेखक नहीं रहे। राजेंद्र यादव, परमानंद श्रीवास्तव, विजयदान देथा, ओम प्रकाश वाल्मीकि, हरिकृष्ण देवसरे तथा के.पी. सक्सेना। कहना न होगा कि राजेंद्र यादव यदि अपने समय के अप्रतिम कथाकार थे तो देथा यानी बिज्जी राजस्थानी लोक परंपरा के विरल कथाकार और परमानंद श्रीवास्तव जी अपने समय के एक सुधी आलोचक। देवसरे जी को बाल साहित्य में भला कौन नहीं जानता और ओम प्रकाश वाल्मीकि दलित विमर्श के ज्वलंत रचनाकार थे जिन्होंने दलित चिंतन को भारत और भारत के बाहर एक स्वीकार्य पहचान दिलाई। हास्य-व्यंग्य की एक हल्की-सी लकीर के.पी. सक्सेना ने भी हिंदी साहित्य में खींची है, जो विस्मृत होने वाली नहीं है।

वे अपनी यशःकाया में जीवित रहेंगे

हिंदी के लिए बीता हुआ वक्त बहुत ही शोकाकुल कर देने वाला रहा है। हमारे समय की एक-से-एक बड़ी विभूतियाँ एक-एक कर विदा होती रहीं। हिंदी की सर्जनात्मक और बौद्धिक संपदा को अपनी रचनात्मकता से भरने वाले इन शहंशाहों के जाने के बाद हिंदी की साहित्यिक दुनिया विपन्न-सी लगने लगी है। संस्कृत में कहा गया है : न सा सभा यत्र न संति वृद्धाः। यानी वह सभा सभा नहीं है, जहाँ पर रचनात्मक अनुभवों से समृद्ध ज्ञानी जन न हों। साहित्य की सभाएं तो ऐसे ही परिपक्व लेखकों के सान्निध्य से बहसतलब होती हैं और सार्थक भी। राजेंद्र यादव, परमानंद श्रीवास्तव, विजयदान देथा, हरिकृष्ण देवसरे, ओमप्रकाश वाल्मीकि और के.पी.सक्सेना का हमारे बीच से विदा हो जाना साहित्य के लिए एक अपूरणीय क्षति है। यद्यपि लेखकों का अपना कोई समय नहीं होता, वे तो अपने समय में होकर भी सदैव एक सार्वजनिक समय में होते हैं। वे जब हमारे बीच नहीं रहते तो यशःकाया में रहते हैं।

राजेंद्र यादव के जाने के साथ हिंदी कथा जगत की नई कहानी दौर की वह त्रयी हमेशा के लिए विलुप्त हो गई है, जिसकी अंतिम कड़ी वे स्वयं थे। मोहन राकेश, कमलेश्वर और अब राजेंद्र यादव के न होने से हिंदी कहानी का इतिहास रचने वाली पीढ़ी अब नहीं रही। २८ अगस्त, १९२९ को आगरा में जन्मे राजेंद्र यादव २८ अक्तूबर, २०१३ को दिवंगत हुए। वे हिंदी के पहले ऐसे सार्वजनिक बुद्धिजीवी, यानी पब्लिक इंटलेक्चुअल थे, जिनके गुज़र जाने की नोटिस अंग्रेज़ी मीडिया ने ली। सारा आकाश, उखड़े हुए लोग, अनदेखे अनजाने पुल, शह और मात और कुलटा उपन्यास और जहाँ लक्ष्मी कैद है, छोटे-छोटे ताजमहल जैसे कहानी संग्रहों के कथाकार राजेंद्र यादव को शुरुआती लोकप्रियता भले ही सारा आकाश से मिली हो, जिस पर बाद में बासु भट्टाचार्य ने फिल्म भी बनाई लेकिन वे बाद में हंस का संपादन संभालने के साथ अपने सुतार्किक और तीखे संपादकीयों से भी चर्चा में रहे। हंस को राजेंद्र यादव ने अपने समय के युवा कथाकारों का मंच बना दिया। हमारे समय के अनेक अच्छे कथाकारों की कहानियाँ हंस में ही प्रकाशित हुईं। एक वक्त कहानी के आंदोलन में जो पहचान सारिका की हुआ करती थी, वही पहचान राजेंद्र यादव ने हंस को दिलाई। कहानियों की अत्यंत प्रासंगिक पत्रिका होने के साथ-साथ उन्होंने उसे लगातार अपने संपादकीयों से बहसतलब बनाए रखा। मराठी साहित्य में दलित विमर्श जब चरम पर था, तब उसकी कोई आहट हिंदी में नहीं सुनाई देती थी। मंडल आयोग के लागू होने के बाद और दलित और पिछड़े वर्ग के ध्रुवीकरण के साथ-साथ साहित्य में दलित विमर्श को स्थापित करने का एक बड़ा प्रयास जिस शख्स ने किया, वे राजेंद्र यादव थे। दलित विमर्श के साथ ही उन्होंने स्त्री विमर्श का आग़ाज़ भी हंस के पन्नों पर ही किया। अनेक बार उन पर ये आरोप लगे कि स्त्री मुक्ति जिस देहवादी फलसफे को वे स्त्री विमर्श के केंद्र में स्थापित कर रहे हैं, वह स्त्री की बौद्धिक मुक्ति का

राजेंद्र यादव ऐसे पहले बड़े साहित्यकार थे, जिन्होंने हंस के पन्नों पर पिछड़ों और दलितों के अधिकारों और इस रास्ते में आने वाली चुनौतियों का मामला उठाया। उन्होंने लगातार इन मुद्दों को केंद्र में रखने वाली कहानियों को वरीयता दी और मंचों पर वे खुलकर ऐसे विषयों के प्रति अपना समर्थन ज़ाहिर करते थे।

रास्ता नहीं है। यह केवल दैहिक स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त करने वाला है। किंतु राजेंद्र यादव इस कोलाहल से हतप्रभ नहीं हुए, बल्कि अंत तक अपनी हाज़िरजवाबी और अपने क्रांतिधर्मी तेवर के साथ ऐसे विमर्शों के शब्दबद्ध करते रहे।

राजेंद्र यादव ऐसे पहले बड़े साहित्यकार थे, जिन्होंने हंस के पन्नों पर पिछड़ों और दलितों के अधिकारों और इस रास्ते में आने वाली चुनौतियों का मामला उठाया। उन्होंने लगातार इन मुद्दों को केंद्र में रखने वाली कहानियों को वरीयता दी और मंचों पर वे खुलकर ऐसे विषयों के प्रति अपना समर्थन ज़ाहिर करते थे। वे पिछड़े वर्ग की बौद्धिकता के एक ऐसे प्रतीक पुरुष थे, जिन्होंने प्रतिभा को कभी किसी जाति या वर्णवादी व्यवस्था का पोषक नहीं माना, बल्कि माना कि हाशिए की आवाज़ों में एक बड़ी ताकत है और उन्हें अब सामने लाने की ज़रूरत है। राजेंद्र यादव ने हमेशा सांप्रदायिकता, सामंतवाद, धर्म और आस्था के जड़ीभूत विचारों का विरोध किया तथा धर्म के पोंगा पंथियों को हमेशा अपनी कलम के निशाने पर रखा।

राजेंद्र यादव कलम के सिपाही थे। एक ऐसे समय जब हिंदी पट्टी में इतनी अल्प साक्षरता हो कि पढ़ना-लिखना भी उनके लिए लक्जरी हो, ऐसे समय उन्होंने हंस को पाठकों में लोकप्रिय बनाने का काम किया। वे एक निर्भीक आलोचक थे तो ख़ुद अपनी भी आलोचना का सहर्ष स्वागत करने को समुत्सुक भी दिखते थे। हंस का पाठकों का कोना उनकी आलोचनाओं से भी देदीप्यमान रहता था। इस मायने में वे पाठकों को एक लोकतांत्रिक स्पेस मुहैया कराने वाले लेखक थे और असहमतियों के बाद भी मैत्री में कोई दरार नहीं आने देते थे। यद्यपि चर्चा में बने रहने के लिए उनके टोटके कम न थे। इसकी हद तो तब हुई, जब उन्होंने अपनी ही पत्नी मन्नू भंडारी को केंद्र में रखकर अपने संस्मरण 'होना और सोना उसके साथ' की नींव रखी। बाद में आई संस्मरणों की किताब 'मुड़-मुड़ के देखता हूँ' में उन्होंने अपने संस्मरण लिखे जो उनकी आत्म स्वीकारोक्तियों और कुंठाओं की भी एक सार्वजनिक अभिव्यक्ति थी। हमारे सुधी संस्कारी समाज को यह स्वीकारोक्ति कहाँ पचने वाली थी। उन पर मन्नू भंडारी का प्रतिवाद भी 'एक कहानी यह भी' के रूप में सामने आया।

राजेंद्र यादव का योगदान यह नहीं है कि वे खुद एक बड़े लेखक थे, बल्कि उन्होंने युवा लेखकों की एक बड़ी टीम भी खड़ी की। मैत्रेयी पुष्पा और प्रभा खेतान की तमाम अच्छी कृतियां उनके मार्गदर्शन से लिखी गयीं। राजेन्द्र यादव से मेरी अनेक मुलाकातें रही हैं। अक्सर वे मेरे द्वारा लिए जाने वाले साक्षात्कारों की चर्चा करते थे। साक्षात्कार पत्रिका में चलाई गयी साक्षात्कारों की सीरीज वे ध्यान से पढ़ रहे थे जिसमें उनका भी एक साक्षात्कार लेने का अवसर मुझे मिला। राजेंद्र जी ने मुझे अपने बारे में जानने के लिए एक दो पन्नों की सघन अक्षरों वाली अंग्रेजी की एक स्क्रिप्ट सौंपी जिसमें उनके बारे में तमाम जानकारियां एकत्रित थीं। एक बार हंस कार्यालय में मिलने पर वे बोले अब किसका शिकार करने का इरादा है ओम जी। मैंने कहा अभी तो किसी का नहीं। फिर अपनी ओर से उन्होंने सबसे पहले प्रभा खेतान को प्रस्तावित करते हुए कहा कि प्रभा के बारे में आपका क्या ख्याल है। मैंने कहा उनके पास तो एक ही कहानी है जिसे वे लगे हाथ उपन्यासों में भी दर्ज करती हैं और आत्मकथा में भी दुहराती हैं। फिर उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा जी के शुरुआती दौर के संघर्ष को मेरे सम्मुख रखते हुए कहना चाहा कि उनसे बात की जानी चाहिए। हालांकि दिल्ली से बाहर रहने की वजह से मैत्रेयी जी से बातचीत न हो सकी।

राजेंद्र यादव हमारे समय के एक बड़े कथाकार थे। वे अपनी तमाम सदिच्छाओं के बावजूद बेशक सच्चे गृहस्थ न हो सके, दुनियादारी न निभा सके पर साहित्य से उनकी यारी पातिव्रत धर्म जैसी बनी रही। अभावों के दिनों से गुजरते हुए भी अक्षर प्रकाशन स्थापित करने से लेकर हंस को पुनर्जीवित करने तक उन्होंने अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए अथक उद्यम किया। उनके संपादकीयों को 'कांटे की बात' पुस्तक-सीरीज में पढ़ा जा सकता है। हिंदी समाज की बौद्धिक चेतना में व्याप्त जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि को निर्मूल करने में राजेंद्र यादव का महत्वपूर्ण योगदान है। उनका न होना हिंदी जगत के एक ऐसे पब्लिक इनटेलेक्चुअल का अवसान है जिसका होना हिंदी की बौद्धिक महफिलों को अर्थवान बना देता था। ■

परमानंद श्रीवास्तव : एक समर्थ आलोचक का अवसान

परमानंद श्रीवास्तव का हमारे बीच न रहना आलोचना में एक गहरे सन्नाटे का परिचायक है। लगभग तीन दशकों से परमानंद श्रीवास्तव को जानता हूँ। आलोचना की लगभग उनकी पहली ही किताब 'नई कविता का परिप्रेक्ष्य' पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला है। इस किताब से एक ऐसे आलोचक से मेरा परिचय हुआ जो आलोचना को जैसे एक प्रांजल

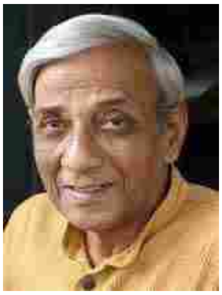

भाषा और नये मुहावरे देने के लिए कटिबद्ध होकर निकला हो। लेखन की शुरुआत उन्होंने गीतों से की। नए बिम्ब और उपमानों के आकर्षण का वह दौर था जब गोरखपुर में भी गीतों का एक सहज वातावरण था। उजली हँसी के छोर पर संग्रह में शामिल उनके गीतों में एक अपूर्व ताजगी मिलती है। गीतों में छंद का जो संयम चाहिए वह उनके गीतों में मौजूद था। पांच जोड़ बाँसुरी में चंद्रदेव

सिंह ने उनके कुछ गीत संकलित किए हैं। इसी में एक गीत है : *हिलती कहीं नीम की टहनी/भूल गयीं वे बातें सबकी सब जो तुमको कहनी।* या *जो न हुए उनके क्षण अपने मन के।* उनकी गीत पंक्तियाँ हैं : *चमकता आकाश-जल हो/ चांद प्यारा हो/फूल जैसा तन, सुरभि-सा मन तुम्हारा हो।* ऐसे गीतों का सर्जक भीतर से कितना रोमैंटिक होगा, यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। यही वजह है कि आगे चलकर उन्होंने देवेंद्र कुमार के गीतों पर बड़े मनोयोग से लिखा जब कि नई कविता के आलोचक गीत पर लिखने से प्रायः परहेज करते रहे हैं। यों तो उन्होंने कहानी व उपन्यासों पर भी लगातार लिखा है किन्तु वे मूलतः कवि और काव्यालोचक ही माने जाते हैं। *उजली हँसी के छोर पर, अगली शताब्दी के बारे में, चौथा शब्द* एवं *एक अनायक का वृत्तांत* जैसे कविता संग्रह एवं *कवि कर्म और काव्य भाषा, समकालीन कविता का व्याकरण, समकालीन कविता का यथार्थ, शब्द और मनुष्य, कविता का अर्थात, कविता का उत्तर जीवन, अँधेरे कुएँ से आवाज़* जैसी आलोचनात्मक कृतियाँ उनके खाते में हैं। कविता और आलोचना से उनकी मैत्री आजीवन बनी रही। यही वजह है कि उनकी डायरी, अंतःप्रक्रियाओं और जर्नल्स में भी आदि से अंत तक कविता और काव्यचर्चा के प्रसंग भरे हैं।

बांसगाँव, गोरखपुर में ९ फरवरी, १९३५ को जन्मे परमानंद श्रीवास्तव को एक उदारचित्त आलोचक के रूप में याद किया जाता है। वे अरसे तक गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से सम्बद्ध रहे। कुछ समय वर्दवान विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर भी रहे। जो कुछ लिखा जा रहा है उसमें उल्लेखनीय की नोटिस लेने में वे सजग रहते थे। हो सकता है ऐसा करने में यदा कदा उत्साह का एक अतिरेक उनके निकट रहा हो पर अपने समय की रचनात्मकता पर उनकी अचूक निगाह थी। उन्होंने अपने समकालीनों और आज की पीढ़ी के जितने कवियों पर लिखा है उतना और किसी अन्य आलोचक ने नहीं। वे सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों किस्म की आलोचना में संतुलन साधकर चलते थे। काव्यालोचन पर समय-समय पर आई उनकी लगभग सभी कृतियां देखी हैं तथा पाया है कि उन्होंने कविता को बारीकी से पढ़ा है। कविता का विश्लेषण करते हुए वे हर कवि की विशिष्टता को अलग से लक्षित करते थे। वे व्यक्ति, समाज, विचारधारा व जीवन को देखने के कवियों के अलग-अलग ढंग को सदैव ध्यान में रखते थे। उदाहरणतः अज्ञेय और मुक्तिबोध के मूल्यांकन में वे यह जानते थे कि व्यक्ति दोनों के यहां महत्वपूर्ण हैं पर मुक्तिबोध का व्यक्ति वही नहीं है जो अज्ञेय का है। मुक्तिबोध सामाजिक चिंता के कवि हैं पर व्यक्ति-चिंता के समूचे गहरे बोध के साथ। वे त्रिलोचन व नागार्जुन के समाज के बीच के अंतर को भी पहचानते थे और रघुवीर सहाय व केदारनाथ सिंह की अलग-अलग जीवन दृष्टियों को भी। किसी भी कवि को उसकी मौलिक प्रवृत्तियों के साथ पहचानना उनकी विशिष्टता रही है।

हिंदी में कुछ इने-गिने आलोचक हैं, जिन्होंने आलोचना को रचना की तरह ही व्यवस्थित रूप देने की कोशिश की है। परमानंद श्रीवास्तव ने नई कविता का परिप्रेक्ष्य के समय से ही कविता के मूल्यांकन-अनुशीलन के लिए कुछ बीज शब्द निर्मित करने आरंभ

कविता का विश्लेषण करते हुए वे हर कवि की विशिष्टता को अलग से लक्षित करते थे। वे व्यक्ति, समाज, विचारधारा व जीवन को देखने के कवियों के अलग-अलग ढंग को सदैव ध्यान में रखते थे।

कर दिए थे। नामवर सिंह के बाद उनकी आलोचना सैद्धांतिकी के निर्माण के साथ-साथ व्यावहारिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त करती है, जिसकी ओर रुझान उनके समकालीनों में प्रायः नहीं दीख पड़ता। उन्होंने निराला और समकालीन कविता की परस्परता का आकलन किया। उस समय के अंतर्विरोध और विरोध की कविता के केंद्र में नागार्जुन जैसे कवि का भी। यह उनकी आलोचना की साहसिकता ही कही जाएगी कि उन्होंने अज्ञेय के होते हुए भी समकालीन कविता के केंद्र में निराला और मुक्तिबोध को रखा। वे इस बात से अवगत थे कि जो छायावाद के बाद की कविता को सीधे अज्ञेय व तार सप्तक से प्रवर्तित मानने के अभ्यस्त रहे हैं, उन्हें समकालीन हिंदी कविता को निराला से जोड़ना अच्छा न लगेगा—न ही उन्हें भी जो मुक्तिबोध से समकालीन कविता की शुरुआत मानते रहे हैं। परमानंद जी का मानना था कि छायावादी रोमेंटिक काव्य संस्कारों से पहला संघर्ष निराला ने ही किया तथा कविता के नए साँचे को हिंदी ने बरता/व्यवहृत किया। इस बात पर उन्हें कोई ऐतराज़ न था कि नागार्जुन या मुक्तिबोध कविता के केंद्रीय व्यक्तित्व माने जाएं पर निराला से क्या समकालीन कविता का कोई संबंध बनता है। यह देखना उन्हें हिंदी कविता की समकालीनता को जाँचने का एक जोखिम भरा उपक्रम था। किंतु शब्द और मनुष्य का पहला निबंध निराला और समकालीन कविता के कृती व्यक्तित्व निराला और समकालीन कविता पर उनके प्रभावों के आकलन की एक महत्वपूर्ण कोशिश है। वे यह भूल नहीं जाते कि निराला ने कविता को मनुष्य की मुक्ति का पर्याय माना था। उन्होंने कविता को छंद के बंधन से मुक्त किया है। अचरज नहीं कि आज के कई सुपरिचित कवि अपनी कविता का रिश्ता मुक्तिबोध से नहीं, निराला जैसे कवि से जोड़ते हैं। परमानंद जी ने केदारनाथ अग्रवाल, रघुवीर सहाय, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र आदि के उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि समकालीन कविता यदि तमाम रूढ़ियों से मुक्त हो पाई है तो इसमें निराला का योगदान सर्वाधिक है।

काव्यालोचन में परमानंद श्रीवास्तव कवियों की विशेषताओं को केंद्र में रखते हैं। जैसे अज्ञेय के काव्य के परिप्रेक्ष्य में वे जिस शीर्षक को केंद्र में रखते हैं, यानी इतिहास से विच्छिन्नता की काव्यात्मक फलश्रुति उसे वे अपने तार्किक विश्लेषण से पुष्ट भी करते हैं। अज्ञेय ने जब लिखना शुरू किया, तब छायावादी प्रभावों का युग था। इन संस्कारों के बीच उन्होंने नई राहें खोजीं और लेखकीय स्वाधीनता और साहित्य विवेक के प्रति अपनी प्रतिश्रुति व्यक्त की। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य को तात्कालिक यथार्थ का रचनात्मक दस्तावेज़ मानते हुए वे केदार को मूलतः जीवन आस्था का कवि मानते रहे हैं, जिसने मार्क्सवादी विचारधारा से जीवन ग्रहण किया। शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट के लिए शमशेर का ही एक पद जितना उनकी काव्यानुभूति की निजता और गहनता का परिचायक है, उतना और शायद ही कोई पद हो और ऐसे पद को परमानंद जी शमशेर पर लिखे

आलोचनात्मक निबंध के शीर्ष पर बिठाते हैं : शब्द का परिष्कार स्वयं दिशा है। नई कविता के भीतर जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि की आलोचना करने वाले मुक्तिबोध को परमानंद जी कविता में उदात्त का पुनराविष्कार करने वाला कवि मानते हैं। मुक्तिबोध का आत्म इतना दीप्त और उदात्त है कि उसमें भारतीय जन मानस के बीहड़ संघर्षों की छवियाँ झिलमिलाती हैं। परमानंद श्रीवास्तव ने जिस दौर में आलोचना शुरू की, उस वक्त एक कवि के रूप में अज्ञेय की प्रतिमा को क्षीण करने के प्रयास जारी थे तथा प्रगतिशील शक्तियाँ मुक्तिबोध को नई कविता के केंद्र में देखना चाहती थीं। ऐसे समय में मार्क्सवादी आलोचना के हामी परमानंद श्रीवास्तव ने अज्ञेय के योगदान को कमतर नहीं आँका बल्कि उनके ऐतिहासिक प्रयत्नों और कविता की बारीक बीनाई की प्रशंसा की। किंतु मुक्तिबोध को भी जिन्हें बाद में भारतीय सभ्यता समीक्षा का एक बड़ा कवि करार दिया गया, उन्होंने मनुष्य की कठिन जिजीविषा, संघर्ष क्षमता और अपराजेय शक्ति का कवि माना। उनके समाज-चेतन दृष्टिकोण को परमानंद जी ने सदैव महत्व दिया। केवल महत्व ही नहीं दिया, बल्कि अज्ञेय और रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे आलोचक के पूर्वाग्रहों की आलोचना भी की।

युवा कविता के तेवर को पहचानने का बड़ा जोखिम यदि किसी आलोचक ने उठाया है तो वे परमानंद श्रीवास्तव हैं। साठोत्तर कविता के केंद्र में रहे धूमिल और धूमिल के बाद की कविता को अरुण कमल के काव्य पद 'अपनी केवल धार' से रेखांकित और चिह्नित करने वाले वे अकेले आलोचक हैं जो सातवें और आठवें दशक के नए यथार्थ के उद्घाटन के लिए काव्येतिहास में हस्तक्षेप करने वाली नई कवि पीढ़ी पर एक बड़ा निबंध लिखते हैं, जिसमें धूमिल की ज़मीन पर विकसित युवा कविता के अनेक संभावनाशील कवियों पर उंगली रखते हैं। यह तो सच है कि मुक्तिबोध के बाद अपने कविता समय में पहचाना जा सकने वाला बदलाव धूमिल के यहाँ ही लक्षित किया जा सकता है, जिन्होंने अकविता के अराजक और अतर्क्य दौर में कविता को भाषा में आदमी होने की तमीज़ माना था। परमानंद जी ने धूमिल के साथ कवियों में उदित होते प्रतिरोध को चिह्नित करते हुए लीलाधर जगुड़ी, कुमार विकल, विनोद कुमार शुक्ल, चंद्रकांत देवताले, ऋतुराज और वेणु गोपाल की कविता को पहचानने और मूल्यांकित करने का काम किया। उन्होंने इन कवियों की मौलिकता को रेखांकित किया तो इनके यहाँ बनती हुई रूढ़ियों और सीमाओं की ओर भी संकेत किया। यह परमानंद श्रीवास्तव की काव्यात्मक संवेदना ही है कि उन्होंने विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं के साथ साहित्यिक वातावरण में उभरते कलावाद और रूपवाद की योजनाबद्ध कोशिशों की सराहा नहीं की और इसे कविता के इतिहास की दुर्घटना कहने का साहस किया। 'अपनी केवल धार' जैसा पद बेशक अरुण कमल ने व्यवहरित किया हो पर यह उस दौर के युवा कवियों की अपनी स्वायत्त पहचान का भी केंद्रीय पद बन गया। इस क्रम में उन्होंने मंगलेश डबराल, ज्ञानेंद्र पति, असद ज़ैदी, अरुण कमल, राजेश जोशी और उदय प्रकाश जैसे कवियों के रूप, रस, गंध और कथ्य की यथार्थवादी पड़ताल की। उन्होंने देखा कि आठवें दशक के कवियों में एक स्पष्ट राजनैतिक रुझान है जो एक तरफ मुक्तिबोध से रस ग्रहण करती है, दूसरी तरफ त्रिलोचन, रघुवीर सहाय और केदार नाथ सिंह जैसे कवियों से भी प्रेरणा पाती है। परमानंद जी ने काव्यात्मक यथार्थ, जीवनधर्मिता, विरुद्धों का सामंजस्य, काव्यात्मक विडंबना, सर्जनात्मक तनाव, परिप्रेक्ष्य संपन्नता जैसे शब्दों का लगातार व्यवहार किया और नए काव्यास्वाद की पहचान के लिए सदैव उत्सुक रहते हुए कविता के प्रतिमानों पर जारी बहस में हस्तक्षेप करते हुए कहा कि प्रतिमानों से कविता नहीं बनती, कविता से ही प्रतिमान बनते हैं। प्रतिमानों से हर हालत में बड़ी ही कविता और कविता से भी बड़ा है जीवन–-दुनिया की तमाम महत्वपूर्ण कविताएं मिलकर जिस जीवन समग्रता को पाना चाहती हैं और जो निरंतर कवियों के लिए चुनौती है।

परमानंद श्रीवास्तव ने प्रभूत मात्रा में लिखा है तो जाहिर है इस लिखने की कोई न कोई सार्थक वजह भी उनके पास होगी। अपने कई निबंधों में उन्होंने अपनी रचना प्रक्रिया को भी डायराइज़ किया है। आलोचना के सृजन सुख में निमग्न रहने वाले परमानंद जी की आलोचना भी रचना की तरह आस्ववादक रही है। इसलिए अक्सर वह दो टूक फैसले देने से अक्सर बचती और प्रायः समीक्षा की चमकदार पदावलियों में ही बिलम कर रह जाती रही है। तब भी बतौर कवि आलोचक, लिखना सदैव उनके लिए एक नैतिक कार्रवाई की तरह रहा है और बेशक उनका बहुतेरा लेखन तात्कालिक बाध्यताओं की ही उपज है, किन्तु रचना के आभ्यंतरिक पाठ और बाह्य प्रभावों को पकड़ने तथा समाज में उसके अन्तसूत्र तलाशने में वे कभी कभार चकित कर देने वाले निष्कर्षों तक पहुंच सके हैं। इधर उत्तरवर्ती लेखन में उनका ध्यान अक्सर ऐसे जुमलों या पदों पर रहा है : मसलन गद्य की ताकत कहां है, कहानी का अपना छंद कहां हैं, प्रगति के नक्शे पर स्त्रियाँ कहां हैं या ऐसे प्रत्यय भी उनके यहां बार-बार आते हैं जैसे उपन्यास के विरुद्ध उपन्यास, आख्यान के विरुद्ध आख्यान, कथा के विरुद्ध कथाविनोद, धारा के विरुद्ध धारा यानी उम्मीद के विरुद्ध उम्मीद की तर्ज पर। ऐसा अक्सर लगता रहा है कि वे आलोचना में किसी को नाराज़ नहीं करना चाहते। और आलोचक से सब खुश रहें, यह संभव नहीं। इसीलिए वे आलोचना की आस्वादवादी लीक से अलग चलने का जोखिम नहीं उठा पाते थे। वे एक बेहतर समीक्षक तो नज़र आते हैं किन्तु आलोचना को जिस हद तक सरलीकृत निष्कर्षों से बचाने और अपने दौर की खराब रचना को भी गंभीरता से वर्गीकृत करते हुए खराब बताने की तार्किक परिणतियों तक पहुंचने और उसे समाज के यथार्थ के समानांतर रख कर जांचने का प्रश्न है, वैसे जोखिम उठाने से वे बचते थे। यह अकारण नहीं कि उनकी मेधा कविता के अर्थ की अनेक संभावनाओं की टोह लेती रहती थी तथा यह जानती थी कि अगर कविता का उत्तर जीवन मुमकिन है तो अर्थ की भी अनेक खिड़कियाँ इस उत्तर समय में खुल सकती हैं।

अंत में कुछ शब्द उनकी कविता पर। समकालीन भारतीय साहित्य के अपने एक संपादकीय में शानी ने एक बार परमानंद श्रीवास्तव की माँ पर लिखी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की थीं— 'वह एक बार फिर खोजता है/तारों में माँ का चेहरा/देखता है वह कि एक ज़रा-से धब्बे में सिकुड़ कर बैठी है माँ/अपनी गिरस्ती का आखिरी दमखम बचाए/उतने छोटे तारे में वही समा सकती है— और लिखा था, उपर्युक्त पंक्तियाँ सिर्फ इसलिए महत्वपूर्ण नहीं हैं कि मां पर लिखी अनेक हिंदी कविताओं से अलग यह अपनी सादालौही, दो टूक मार्मिकता, जड़ों से फूटने वाले जल और सपने की तरह चमकीली और साफ है बल्कि इस बात का भी उदाहरण हो सकती है कि बिना किसी भी तरह के बौद्धिक छद्म, आरोपित मुद्रा और सैद्धांतिक आतंक का सहारा लिए भी तेज धार की प्रासंगिक और कारगर कविता लिखी जा सकती है— तब और जब कविता का विषय स्वयं अपने चरित्र के कारण करुणा का पर्याय बन चुका हो और शायद इसलिए और भी मुश्किल और जोखिम-भरा हो।' *उजली हँसी के छोर पर, अगली शताब्दी के*

बारे में, चौथा शब्द और *एक अनायक का वृत्तांत* जैसे संग्रहों के कवि परमानंद श्रीवास्तव को भले ही कविता में विशेष ख्याति न मिली हो किन्तु अपने समय की संवेदना को पहचानने की शक्ति उनमें अचूक थी। उनकी कविता इसी संवेदना का आश्रय ग्रहण करती है। हादसे का एक दिन शीर्षक एक कविता में वे लिखते हैं : 'एक दिन ऐसे ही गिरूँगा टूट कर/महावृक्ष के पत्ते-सा/कुछ पता नहीं चलेगा/ निचाट सुनसान में/चीख फट पड़ेगी बाहर/झूल जाऊँगा रिक्शे से/लिटा दिया जाएगा खुरदरी जमीन पर/क्या यह अंत से पहले की शुरुआत है?' उन्हें पुरस्कार तो बहुतेरे मिले, भारत भारती भी। पर साहित्य अकादेमी नहीं। इसका मलाल उन्हें रहा है। कविता पर नहीं तो आलोचना पर तो मिल सकता था। उनके पहले संग्रह *उजली हँसी के छोर पर* पर कुंवर नारायण ने कल्पना में लिखा, 'चौथा शब्द' पर भी काफी कुछ लिखा गया, *एक अनायक का वृत्तांत* पर मैंने भी लिखा है। चर्चा हुई पर उनका कवि उनके ही आलोचक के आगे बौना रह गया। उनकी संवेदनशीलता का आलम यह कि वह राह चलते ट्रेन में अचानक मिल गयी एक स्त्री 'दक्षा पटेल के लिए' एक अत्यंत मार्मिक कविता लिख सकते थे और अपने अंत का एक आनुमानिक वृत्तांत भी 'हादसे का एक दिन' जैसी छोटी कविता में। *एक अनायक का वृत्तांत* में उनकी एक कविता है 'हाट बाज़ार'। कविता सादे ढंग से रची हुई है पर हमारा समय इसमें प्रतिबिम्बित होता है -

तुम अश्लीलता बेचते हो
हम तन ढंकने के लिए सूत कपास
तुम विज्ञापनों पर कायम हो विश्व बाजार में
मैं गांव के साप्ताहिक बाजार में खरीदने आया हूँ
गेहूँ और किरासिन तेल
पशुओं के लिए खली व चारा
तुम बुश के लिए चिंतित हो
मैं बगदाद और बर्बाद इराक के लिए।

उनकी कविता में हमारे समय की कुछ शख्सियतें बार-बार आती हैं जैसे रतन थियम, कारंत, एडवर्ड सईद, निर्मला देशपांडे, गिरिजा देवी, मालिनी राजुरकर, मेधा पाटकर, शबाना, अरुंधती राय, भानू मजूमदार, असगर अली इंजीनियर, राजेंद्र शाह, रंजना अरगड़े, बिंदु भट्ट और मृदुला पारीक—ये उनके लिए केवल नाम भर न थे, इनके बहाने वे अपने समय से संवाद व जिरह का रिश्ता बनाते थे। सच कहें तो वे कविता के अहेरी थे। आलोचना के संपादन काल में उन्होंने अनेक कवियों की कविताएँ छापीं किन्तु कविता और कवियों से उनकी आशिकी अलग तरह की थी। वे कवियों की सोहबत में जीने वाले इंसान थे पर विश्रांति उन्हें आलोचना की दुनिया में लौट कर ही मिलती थी। वे लेखक मित्रों से बतियाते हुए खुरदुरी हथेलियाँ, नींद थी और रात थी, पानी का स्वाद, पद कुपद, एक जन्म में सब, रोशनी के रास्ते पर, कलिकथा वाया बाईपास, मिट्टी के फल, मैं बोरिशाइल्ला, हमारा शहर उस बरस? यह आकांक्षा समय नहीं और अन्य तमाम ताज़ातर कृतियों के बहाने जिस तरह अनामिका, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, अष्टभुजा शुक्ल, अनीता वर्मा, अलका सरावगी, प्रेमरंजन अनिमेष, महुआ माझी, गीतांजलिश्री व गगन गिल आदि कवियों-कथाकारों की चर्चा करते रहते थे, उस सहज भाव से आज भला कौन चर्चा करेगा? वे आज नहीं हैं तो युवा कवियों को आँखों पर बिठा रखने वाला आलोचक जैसे हमारे बीच से विदा हो गया है। अच्छी कविताएँ लिखी जा रही हैं, लिखी जाती रहेंगी पर अच्छी कविताओं की नोटिस लेने वाला उन जैसा सहृदय आलोचक शायद ही मिले।■

विजयदान देथा : वे एक अप्रतिम लोककथा शिल्पी थे

विजयदान देथा यानी बिज्जी भले ही राजस्थानी भाषा में लिखने वाले लेखक रहे हों, हिंदी में उनकी लोकप्रियता कम नहीं है। बल्कि कहा जाए तो हिंदी संसार उन्हें अपने बीच का ही कथाकार मानता जानता रहा है। उन्होंने राजस्थानी लोककथाओं का अपनी कल्पनाशीलता से 'बातां री फुलवाड़ी' के चौदह खंडों में पुनर्वास किया जो लोककथाओं के इतिहास में विरल है। *बातां री फुलवाड़ी* ने न केवल राजस्थानी में बल्कि हिंदी में हजारों पाठक पैदा किए। वे इन्हीं लोककथाओं के बल पर राजस्थानी में साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित होने वाले पहले लेखक थे। आज जहाँ लेखक सुविधासंपन्न शहरों महानगरों में रहना पसंद करते हैं, बिज्जी लगभग आजीवन जोधपुर के अपने गांव बोरूंदा, राजस्थान में ही रहे और वहीं से दिल्ली या अन्यत्र आते-जाते रहे।

१ सितंबर १९२६ को बोरून्दा, जोधपुर में जन्मे विजयदान देथा का निधन १० नवंबर २०१३ को उनके गांव बोरुंदा में हुआ तो हिंदी समाज स्तब्ध रह गया। बिज्जी की जितनी लोकप्रियता राजस्थानी में थी उससे कम हिंदी वालों के बीच न थी। कहा जाता है कि वे साहित्य में अपनी श्रेष्ठता के बल पर २०११ में नोबेल पुरस्कार के लिए भी नामित किए गए थे। जयपुर दूरदर्शन से उनकी कहानियों पर उदयप्रकाश ने धारावाहिक बनाया। इसकी कई कड़ियाँ मुझे देखने को मिली हैं। कहना न होगा कि लोककथाओं में तो यों ही कुतूहल होता है, उसमें बिज्जी जैसे कल्पनाशील कथाकार की मेधा शामिल हो तो फिर कहना ही क्या? वे चाहते तो सीधे हिंदी में भी लिख कर एक व्यापक पाठक समाज का हिस्सा बन सकते थे पर अपनी भाषा के हित में उन्होंने राजस्थानी में ही लिखने का बीड़ा उठाया। बाद में भारतीय ज्ञानपीठ से हिंदी में उनका कथा संग्रह 'दासी की दास्तान' आया जो बेहद चर्चित हुआ।

एक दौर था ऐसी लोक कथाएं गांवों के चौपालों में ही सुनने को मिलती थीं बड़े बुजुर्गों के मुँह से। धीरे-धीरे यह परंपरा क्षीण होती गयी। दादियों-नानियों बुजुर्गों से सुनी जा सकने वाली कहानियों के दिन लद गए। बिज्जी की कल्पनाशीलता ने लोककथाओं को एक आधुनिक ज़मीन दी। उनकी एक कहानी 'कल्पना का अंत' बेहद चर्चित कहानियों में है। उनकी कहानियाँ, उनके शब्द, विस्मय तथा कौतूहल पैदा करने वाले चरित्र, जानवर, प्रेत सभी एक ऐसा वातावरण निर्मित करते हैं जहाँ पहुंच कर कहानी मानवीय कल्पना के चरम को छूती है। यह और बात है कि नोबेल पुरस्कार के लिए नामित इस कथाकार से अंग्रेजी बोलने वाला बौद्धिक तबका आज तक उस रूप में नहीं जुड़ सका जैसे वह यूरोपीय

> विजयदान देथा की कहानियों का वाचिक वैभव अद्भुत था - जैसे हम उनके मुंह से कहानियां सुन रहे हों। वे एक ऐसे लोकवार्ताकार थे जिन्होंने गांव घर की बोली को राजस्थान की सीमा से बाहर पूरे देश और विश्व में अमर बना दिया।

लेखन से जुड़ता है। लोक कथाओं के संग्रह का उनका जुनून अवध के रामनरेश त्रिपाठी या हिंदी के देवेंद्र सत्यार्थी से कम न था जो क्रमशः लोकगीतों व लोकवार्ताओं के संग्रह के लिए ख्यात हैं।

बिज्जी के कृतित्व का फलक बहुत बड़ा है। १९४७ में उनका पहला कविता संग्रह 'ऊषा' हिंदी में ही आया। ज्वाला साप्ताहिक में उन्होंने कई वर्षों तक छद्मनाम से कई स्तंभ लिखे। कोमल कोठारी के साथ वे प्रेरणा मासिक में रहे। बाद में परंपरा त्रैमासिक के तीन विशिष्ट अंक संपादित किए। रूपम त्रैमासिक पत्रिका से भी वे संबद्ध रहे। राजस्थानी मासिक पत्रिका वाणी का संपादन उन्होंने कोमल कोठारी के साथ १९५८ से १९६० तक किया। तदनंतर १९६१ से १९७६ तक उन्हीं के साथ 'लोक संस्कृति' मासिक पत्रिका संपादित की। बातां री फुलवाड़ी का पहला भाग १९६१ में आया तो उसकी सहसा चर्चा से वे स्वयं चर्चा में आए। उसके और खंडों की मांग उनसे होने लगी और यह सिलसिला चलता गया। इसके १४ खंड निकले जिसका अब हिंदी अनुवाद भी लगभग हो चुका है। इसके अलावा कई बालकथाएं उन्होंने लिखीं। दुविधा व अन्य कहानियां तथा उलझन कहानी संग्रह हिंदी में आए। उनकी कहानी दुविधा पर मणि कौल ने 'दुविधा' नाम से और अमोल पालेकर ने 'पहेली' शीर्षक से फिल्म बनाई। हबीब तनवीर द्वारा सैकड़ों बार खेला और सराहा गया नाटक 'चरणदास चोर' बिज्जी की ही रचना चरणदास चोर पर आधारित है। और बातां सी फुलवाड़ी के हिंदी अनुवादों ने तो पहले ही खंड से हिंदी जगत के पाठकों का मन मोह लिया। लोककथाओं का ऐसा पुनर्जीवन! १९७४ में वे इसके लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित हुए। भारतीय भाषा परिषद पुरस्कार १९९० में मिला। नाहर पुरस्कार, राजस्थान श्री, राजस्थान रतन, द ग्रेट सन आफ राजस्थान साहित्य चूड़ामणि और पद्मश्री व साहित्य अकादेमी फेलोशिप जैसे अनेक पुरस्कार व सम्मान उनके खाते में हैं।

अपने बारे में वे कहते हैं, 'विद्यार्थी जीवन में कई छोटे बड़े अपराध किये। पर बाहर से सामाजिक दंड मुझे एक भी नही मिला और वही मेरे लिए सबसे बड़ी सजा हो गयी। भीतर ही भीतर वैयक्तिक रूप से स्वयं को इतना दंडित किया कि वह बड़े से बड़े अपराध के लिए भी कठोर होता रहा। उस दंड का परिणाम है कि मैं कातिल चोर लुटेरा– साफ शब्दों में कहूँ तो रंगा बिल्ला नहीं बन कर एक लेखक बन गया। अपने जीवन के प्रति निरंतर अत्याचार किए पर अक्षर की मर्यादा को, शब्द की महिमा को कलम की प्रतिष्ठा को और अध्ययन की पवित्रता को जाने अजाने कभी दूषित नहीं किया।'

देथा की कहानियां आलोचकों के लिए भी चुनौती रही हैं। उन पर लिखते हुए आलोचक और कथाकार विजयमोहन सिंह कहते हैं : 'एक नजर में ये कहानियां लोककथाओं का भाषाई रूपांतर लगती हैं, जैसे देथा ने रामनरेश त्रिपाठी के लोकगीतों के संग्रह की तरह लोककथाओं का संग्रह किया है। लेकिन ठीक यहीं ये कहानियां चकमा देती हैं और उलझन पैदा करती हैं। देथा यह बताना भी नहीं चाहते कि वे कहानियां लिख रहे हैं। वे तो जो कुछ मौखिक, वाचिक और निजंधरी है, उसे लिपिबद्ध कर रहे हैं—यथावत तथा उसी भाषा में। लेकिन क्या देथा केवल यही करना चाहते हैं ओर ये कहानियां महज यही, तथा इतनी ही हैं?' उनकी कहानियों में किस्सागोई का ऐसा जादू और किसी भारतीय भाषा के लेखक के पास नहीं है जहाँ लेखक जैसे किस्सा कहता हुआ भी नेपथ्य में चला जाता है। कहना न होगा कि उनकी कहानियों का भावबोध इतना आधुनिक हो उठता है कि वह लोककथाओं का एक आधुनिक संस्करण लगने लगता है।

विजयदान देथा हिंदी के संभवतः आख़िरी क़िस्सागो थे जिन्होंने उस बोली राजस्थानी में लिखना शुरू किया जो संविधान की आठवीं अनुसूची में भी नहीं है। उनकी कहानियों का वाचिक वैभव अद्भुत था, जैसे हम उनके मुंह से कहानियां सुन रहे हों। वे एक ऐसे लोकवार्ताकार थे जिन्होंने गांव घर की बोली को राजस्थान की सीमा से बाहर पूरे देश और विश्व में अमर बना दिया। आज उसके अनेक भाषाओं में अनुवाद हो रहे हैं। अपनी बोली, अपनी भाषा के प्रति ऐसा स्वाभिमानी लेखक शायद तुलसी के बाद बिज्जी ही हों, जिन्होंने उस मिट्टी से निकली कहानियों को उसी माटी से उपजी भाषा में अपनी कल्पना और आधुनिक भावबोध में गूँथकर पाठकों के सम्मुख परोसा। देथा भारतीय भाषाओं के लेखकों के लिए न केवल प्रेरणास्रोत हैं बल्कि इस बात का प्रमाण भी कि उन्हें नोबेल पुरस्कार भले न मिला हो, इसी बोली की कहानियों के किस्सागो को कम से कम नोबेल पुरस्कार के लिए नामित तो किया गया। यह अच्छी बात है कि बिज्जी की किस्सागोई की विरासत को संभालने के लिए उनके पुत्र कैलाश कबीर हैं जो स्वयं बेहद अच्छे रचनाकार हैं तथा बिज्जी के प्रभूत लेखन के अनुवाद से संलग्न हैं। ■

हरिकृष्ण देवसरे : बच्चों के पसंदीदा लेखक

यह कितने अचरज की बात है कि बच्चों का एक लेखक बाल दिवस को ही महाप्रयाण करे। ऐसा ही हुआ बच्चों के अप्रतिम लेखक **हरिकृष्ण देवसरे** के साथ। जब समूचा देश नेहरू के जन्मदिवस पर बाल दिवस मना रहा था, विद्यालयों संस्थानों आदि में बच्चों के समारोह आयोजित हो रहे थे, बाल साहित्य पर यत्र तत्र गोष्ठियाँ चल रही थीं, उसी दिन हिंदी का यह लाड़ला बाल साहित्यकार इस जीवन से अपना जाल समेट रहा था। १४ नवंबर २०१३ को देवसरे जी ने इहलोक में अंतिम सांसें लीं।

मध्यप्रदेश के नागोद में ९ मार्च १९३८ को पैदा हुए देवसरे हिंदी साहित्य के अग्रणी लेखकों में शुमार किए जाते हैं। बाल साहित्य में योगदान के लिए उन्हें २०११ में साहित्य अकादमी बाल साहित्य लाइफ टाइम पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। २५० से ज्यादा पुस्तकें लिख चुके देवसरे को बाल साहित्यकार

सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के बाल साहित्य सम्मान, कीर्ति सम्मान (२००१) और हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान (२००४) व वात्सल्य पुरस्कार सहित कई पुरस्कारों और सम्मानों से अलंकृत किया गया है। वे ऐसे पहले लेखक हैं जिन्होंने बाल साहित्य में पीएचडी की उपाधि ग्रहण की। उन्होंने भारतीय भाषाओं में रचित बाल-साहित्य में रचनात्मकता पर बल दिया और बच्चों के लिए मौजूद विज्ञान-कथाओं और एकांकी के ख़ालीपन को भरने की कोशिश की। देवसरे ने २००७ में न्यूयॉर्क में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में भी भाग लिया था।

बाल साहित्य एक अरसे तक हिंदी साहित्य के इतिहास में चर्चा के योग्य नहीं समझता जाता था। यहां तक कि बाल रचनाकारों को हिंदी की अन्य विधाओं के रचनाकार हेय दृष्टि रखते थे। वे बाल साहित्य को कमतर प्रतिभा के लेखकों का साहित्य समझते थे। ऐसे वक्त द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, निरंकार देव सेवक व हरिकृष्ण देवसरे जैसे लेखकों ने बाल साहित्य की कमान अपने हाथ में ली। संभवतः निरंकार देव सेवक की शोध कृति के बाद 'हिंदी बाल साहित्य : एक अध्ययन' बाल साहित्य पर एक ऐसी पुस्तक थी जिसके आधार पर बाल साहित्य का व्यवस्थित अध्ययन शुरू हुआ।

जब मैंने हिंदी के जाने-माने बालगीतकार द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी पर आलोचनात्मक कृति लिखनी शुरू की तो सबसे पहले मैंने देवसरे जी व निरंकार देव सेवक की बाल साहित्य विषयक पुस्तक का ही संदर्भ ग्रहण किया। हिंदी में बाल साहित्य का ऐसा व्यवस्थित लेखा-जोखा करने वाला दूसरा लेखक आज हमारे बीच नहीं है। कविता, कहानी, नाटक, आलोचना आदि विधाओं में उनकी लगभग २५० पुस्तकें प्रकाशित हैं। वे अरसे तक बच्चों की लोकप्रिय पत्रिका 'पराग' के संपादक रहे तथा अंत तक बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं को अपनी कृतियों से समृद्ध करते रहे। देवसरे जी लेखक होने के साथ-साथ कुशल संपादक भी थे। उनके संपादन में बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं की कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। मुझसे अक्सर द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी कहा करते थे कि हिंदी बाल साहित्य में देवसरे का काम बड़ा है। देवसरे एक ऐसे आधुनिक बाल साहित्य लेखक व संपादक थे जिन्होंने बाल साहित्य के नाम पर राजा-रानियों तथा परियों तथा भूत-प्रेतों की कहानियों की प्रासंगिकता के सवाल खड़े किये और मौलिक लेखन को प्रोत्साहित किया।■

"देवसरे एक ऐसे आधुनिक बाल साहित्य लेखक व संपादक थे जिन्होंने बाल साहित्य के नाम पर राजा-रानियों तथा परियों तथा भूत-प्रेतों की कहानियों की प्रासंगिकता के सवाल खड़े किये और मौलिक लेखन को प्रोत्साहित किया।"

ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित विमर्श की एक महत्वपूर्ण कड़ी

जूठन से अपने लेखन की एक लंबी पारी खेलने वाले लेखक **ओमप्रकाश वाल्मीकि** भी पिछले दिनों नही रहे। ३० जून, १९५० में मुज़फ्फर नगर में जन्मे ओमप्रकाश वाल्मीकि पिछले लगभग एक साल से अस्वस्थ चल रहे थे और १८ नवंबर २०१३ को देहरादून के एक अस्पताल में अंतिम सांस ली। केवल ६३ साल की अवस्था में इस संसार को अलविदा कहने वाले वाल्मीकि हिंदी दलित साहित्य को संतुलित और समावेशी दृष्टि से समृद्ध करने वाले लेखक थे। मैं समझता हूँ, मराठी में दया पवार की आत्मकथा 'अछूत' के बाद किसी दलित आत्मकथा को इतनी लोकप्रियता मिली है तो वह 'जूठन' ही है। यह वही दौर है, हिंदी में दलित विमर्श अपने पाँव पसार रहा था और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अपनी जगह बना रहा था। हाशिये की आवाज़ों के प्रबल होने के साथ-साथ हिंदी में दलित आत्मकथाओं का सिलसिला ही चल पड़ा, किंतु ऐसी कोई आत्मकथा न लिखी गई जो जूठन के मानक को छू सके या उसे लाँघ सके। इस किताब के अब तक अनेक भाषाओं में रूपांतर हुए हैं तथा यह दलित विमर्श की जैसे एक प्रस्तावना ही बन गई है। जूठन के अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जिन्हें पढ़ते हुए दलितों के प्रति अत्याचार के दृश्य जीवंत हो उठते हैं। आज के आधुनिक

वर्चस्वशाली समाज में भी दलितों की जो स्थिति है, वह बहुत अच्छी नहीं है। यह उस समाज की कथा है, जहाँ खाप पंचायतें सक्रिय हैं और जहाँ दलितों की स्थिति सेवा-टहल करने वाले समाज से बेहतर नहीं है। जूठन में अपनी माँ के स्वाभिमान का प्रसंग दर्ज करते हुए जिस नेक नियति से वाल्मीकि ने माँ की क्रांतिकारिता को आँका है, वह उस दौर के लांछनमय जीवन के बीच एक दुस्साहस की तरह था। शायद माँ की क्रांतिकारिता के ये बीज आगे चलकर वाल्मीकि के लेखन में पल्लवित हुए हैं, जिसने हिंदी में दलित विमर्श की शक्ल ही बदल दी। एक ऐसे समय, जब समाज का ढाँचा सामंती हो, उच्च जातियों का वर्चस्व हो, ऐसे में दलित बस्ती के किसी बच्चे का निर्बाध रूप से पढ़ पाना और आगे बढ़ पाना कितना मुश्किल होता है, यह हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। पिछले दिनों प्रकाशित तुलसी राम की आत्मकथा मुर्दहिया में ऐसे प्रसंग पुनर्जागृत होते हैं, जिनसे 'दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ

आज जो नहीं कही' जैसी मार्मिकता प्रतिबिंबित हो उठती है। शायद यही पीड़ा रही होगी कि ओम प्रकाश वाल्मीकि को अपनी एक कविता 'जूता' में लिखना पड़ा— *तुम्हारी महानता मेरे लिए स्याह अंधेरा है, मैं जानता हूँ/मेरा दर्द तुम्हारे लिए चींटी जैसा/और तुम्हारा अपना दर्द पहाड़ जैसा/इसलिए, मेरे और तुम्हारे बीच/एक फासला है/जिसे लंबाई में नहीं/समय से नापा जाएगा।*

ओम प्रकाश वाल्मीकि ने हिंदी साहित्य को अनेक कृतियाँ दीं। सदियों का संताप, बस्स बहुत हो चुका और 'अब और नहीं' कविता संग्रह तथा 'सलाम' व 'घुसपैठिये' जैसे कहानी संग्रह। आत्मकथा 'जूठन' के अलावा दलित साहित्य पर उनकी पुस्तकें 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्दत्र', मुख्य धारा और दलित साहित्य व सफाई देवता जैसी कृतियाँ दलित साहित्य को एक नई दिशा देने की दृष्टि से उल्लेखनीय मानी जाती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि देहरादून स्थित आर्डिनेंस फैक्ट्री में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत थे और सेवानिवृत्ति के बाद स्वतंत्र लेखन में प्रवृत्त थे कि एकाएक कैंसर की व्याधि ने उन्हें अपनी गिरफ्त में ले लिया। वे मृत्यु से संघर्ष करते हुए विदा हुए। साहित्य में अप्रतिम योगदान के लिए उन्हें कई पुरस्कारों से भी नवाज़ा गया था– कथाक्रम सम्मान, न्यू इंडिया बुक प्राइज़ तथा साहित्य भूषण सम्मान। ओमप्रकाश वाल्मीकि यद्यपि 'जूठन' के कारण साहित्य में चर्चा के केंद्र में रहे, किंतु कविता में भी उनकी मेधा देखते ही बनती थी। शंबूक का कटा सिर, अंधेरे में शब्द, ठाकुर का कुआं? सदियों का संताप जैसी कविताएं पढ़े जाने की मांग करती हैं। वे दलित साहित्य को ग़लत समझे व संदर्भित किए जाने से विचलित हो उठते थे तथा ऐसे ही एक संदर्भ में उन्होंने एक बहसतलब आलेख लिखा था, जिसमें उन्होंने दलित साहित्य के पुरोहितों को आड़े हाथों लिया था। वाल्मीकि दलित लेखकों के बीच भी बनते जातिगत गुटों और समूहों की आलोचना करते थे। वे चाहते थे कि विभिन्न प्रांतों, अंचलों की दलित जातियों से लेखक निकलें और उनमें जातिवादी प्रवृत्तियाँ तिरोहित हों। वे दलित हिंदी लेखकों की इस कुंठा को अनुचित मानते थे जो मराठी दलित लेखकों की अकारण आलोचना किया करती थी।

ऐसे सकारात्मक सोच के लेखक के चले जाने से भारतीय लेखन में दलित साहित्य की एक अलग परंपरा निर्मित करने वाला लेखक हमारे बीच से चला गया है।■

और अंत में के.पी.

जिस दौर में श्रीलाल शुक्ल, हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे लेखकों का बोलबाला रहा हो, व्यंग्य की महीन-से-महीन बुनावट और धारदार व्यंग्य से इसे एक सम्यक विधा के रूप में स्थापित किया जा रहा हो, ऐसे समय में अपने हास्य-व्यंग्य से अपने को एक अलग पहचान बना लेने वाले व्यंग्यकार के रूप में स्थापित कर पाना आसान नहीं है। **के.पी. सक्सेना** उसी दौर की अगली पीढ़ी के ज्वलंत हस्ताक्षर रहे हैं, जिन्होंने अपनी हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं से लगभग तीन-चार दशकों तक पाठकों को अपना मुरीद बनाए रखा हो। गत ३१ अगस्त, २०१३ को वे हमारे बीच नहीं रहे।

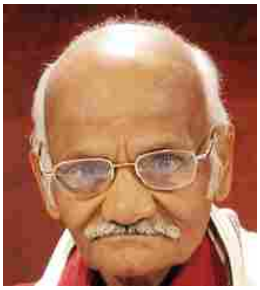

एक समय धर्मयुग और साप्ताहिक हिंदुस्तान और दैनिक अखबारों में उनकी व्यंग्य रचनाएँ छाई रहती थीं। उन्हें पढ़ना अपने भीतर के अवसादों से मुक्ति पाने जैसा था। उनके व्यंग्य में ग़ज़ब की पठनीयता होती थी और अनेक बार आप बिना खिलखिलाए हुए नहीं रहे सकते थे। उनके व्यंग्य संग्रह 'नया गिरगिट' में एक ऐसी शैली की व्यंग्य रचनाएं देखने को मिलती हैं, जिसे पढ़ते हुए माथे पर बल नहीं पड़ते। वे एक तरफ पाठकों को गुदगुदाने वाले लेखक थे तो दूसरी तरफ दुनियाभर की चिंता ओढ़े हुए पाठकों को चिंतामुक्ति का मार्ग भी सुझाते थे। हास्य कवियों के बीच वे मंच पर भी ख़ूब जमते थे। उनके गद्य की एक-एक पंक्ति लोटपोट कर देती थी।

अक्सर लोगों का रेलवे से वास्ता पड़ता है पर रेल की खटर-पटर के बीच कोई कालिका प्रसाद सक्सेना भी है जो स्टेशन मास्टर होते हुए भी अपने व्यंग्य से लाखों को गुदगुदा देने की क्षमता रखता है। यह जानकारी बहुतों को न थी। आकाशवाणी, दूरदर्शन के लिए उन्होंने अनगिनत नाटक लिखे। दूरदर्शन के लिए लिखे उनके धारावाहिक 'बीबी नातियों वाली' को बेहद पसंद किया गया। उन्होंने अपने व्यंग्य के पात्रों–भैनजी और मिर्जा के ज़रिये अपने वक्त की विडंबनाओं की जमकर ख़बर ली। यूँ तो वे रहने वाले बरेली के थे, किंतु उनके व्यंग्य का मिज़ाज लखनउआ था। लखनऊ में बसने के साथ-साथ उन्होंने अपने हास्य-व्यंग्य को उस व्यंग्य की तेजोदीप्त परंपरा से अलग किया, जिसके उन्नायक लेखकों में हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी, रवींद्र नाथ त्यागी और मनोहरश्याम जोशी जैसे लेखक रहे हैं और जिस तेवर का प्रतिनिधित्व आज ज्ञान चतुर्वेदी जैसे लेखक कर रहे हैं। के.पी. सक्सेना प्रथमतः और अंततः अपनी किस्म के एक अलग लेखक थे, जिनका व्यंग्य अपनी भाषा, अपने शिल्प, अपने अंदाज़ेबयाँ और लखनवी मिज़ाज से दूर से ही पहचाना जाता रहा है।■

"के.पी. सक्सेना को पढ़ना अपने भीतर के अवसादों से मुक्ति पाने जैसा था। उनके व्यंग्य में ग़ज़ब की पठनीयता होती थी और अनेक बार आप बिना खिलखिलाए हुए नहीं रहे सकते थे। उनके व्यंग्य संग्रह 'नया गिरगिट' में एक ऐसी शैली की व्यंग्य रचनाएं देखने को मिलती हैं, जिसे पढ़ते हुए माथे पर बल नहीं पड़ते।"

सारा प्राइस-अरोरा

ओरोगन स्टेट यूनिवर्सिटी से मास्टर्स डिग्री प्राप्त की। मेडिकल एंथ्रोपोलॉजिस्ट और शोधकर्ता हैं एवं भारत में महिलाओं के स्वास्थ्य और बच्चों के जन्म के बारे में पढ़ती हैं। राजस्थान में गैर सरकारी संगठन, जो दाइयों के साथ काम करते हैं, उनकी सलाहकार हैं। तीन सालों से हिन्दी सीख रही हैं। अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज के साथ फैलो रही हैं। सम्प्रति - कोलोराडो में रहती हैं।

सम्पर्क : saranicoleprice@gmail.com

मन की बात

अमेरिका के स्कूलों में धर्म

महिलाओं के लिये हर देश में अलग-अलग संघर्ष होते हैं। कभी-कभी संघर्ष की वजह से महिलाएँ स्कूल नहीं जा पाती हैं और फिर भी दुखद स्थितियों के कारण कुछ महिलाओं को स्कूल छोड़ना पड़ता है। लेकिन लोग ऐसा नहीं सोचते हैं कि अमेरिका स्कूलों में समस्या होती हैं। जब भी मैं भारत जाती हूँ तो आम तौर पर लोग मुझ से अमेरिका के जीवन के बारे में पूछते हैं। 'अमेरिका में सब लोग अमीर हैं ना?' कुछ लोग कहते हैं कि आप लोगों की कोई संस्कृति नहीं हैं। लेकिन हमेशा लोग यह सवाल पूछते हैं 'आप ईसाई हैं ना?' हालाँकि इस प्रकार के सवाल बहुत बार सुनने के बाद मुझे आदत हो गई है। फिर भी मुझे जवाब देना बहुत मुशिकल होता है। कारण यह है कि सच में अमेरिका की समस्याएं बहुत जटिल हैं। शायद हमारी समस्याएं भारत की समस्याओं से अलग हैं, लेकिन हमारे लिये ये मामला बहुत गंभीर है। आजकल मेरे देश अमेरिका में बहुत सारे धर्मों के लोग हैं लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि सब लोग शान्ति से अपने धर्म मान सकते हैं, किसी तकलीफ के बिना। तनाव हमेशा रहता है।

> अमेरिका में बहुत सारे धर्मों के लोग हैं लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि सब लोग शान्ति से अपने धर्म मान सकते हैं, किसी तकलीफ के बिना। तनाव हमेशा रहता है।

कुछ साल पहले तमिलनाडु के एक छोटे से स्कूल में बैठी हुई मैं शोध का काम कर रही थी। उस समय एक पीले रंग की वर्दी पहनी हुई लड़कियों का समूह मेरा पास आया। दूसरी छात्राओं के नीले रंग की वर्दी की तुलना में उन लड़कियों की पीले रंग की वर्दी बहुत चमकदार लगती थी। हालाँकि अमेरिका में औपचारिक जाति व्यवस्था नहीं है फिर भी मेरे त्वचा के रंग से और चेहरे की बनावट से वो मुझे अलग करते हैं। सच यह है कि जाति व्यवस्था के बिना लोग फर्क पहचान सकते हैं। और मेरा फर्क है कि मैं ईसाई नहीं हूँ।

तमिलनाडु के उस छोटे-से स्कूल में लड़कियाँ एक गोले में बैठी हुई थीं और मैं बीच में थी। उन्होंने मुझसे बहुत सारे सवाल पूछे। जैसे मैं कहाँ से हूँ? या मैं इतनी गोरी कैसे हूँ? और उन्होंने पूछा- आपका चेहरा इतना भारतीय लगता है फिर मैं अमेरिका से कैसी हो सकती हूँ? आखिरकार एक छोटी-सी लड़की ने मुझ से पूछा क्या मुझे स्कूल में पढ़ना

> भारत में और अमेरिका में शायद हमें सीखना चाहिये कि कोई भी देश दूसरे से बेहतर नहीं है। खासतौर पर जब तक हम अपने बच्चों की मौलिक शिक्षा में बदलाव नहीं लाते और उन्हें सब धर्मों का सम्मान करना नहीं सिखाते हैं।

अच्छा लगता था? और जब मैं उसकी उम्र में थी तब मेरे बहुत सारे दोस्त थे?

'नहीं।' मैंने उसको जवाब दिया। जब मैं स्कूल में थी तो आमतौर पर अकेली थी।

लेकिन क्यों मैडम? आप बहुत गोरी हैं! आपके इतने सारे दोस्त होने चाहिये थे!

मुस्कुराती हुई मैंने कहा- वास्तव में जहाँ से मैं हूँ वहाँ मैं इतनी गोरी नहीं हूँ। वहाँ के लोगों से मैं बहुत अलग लगती हूँ। उस लड़की का इशारा उसकी पीली वर्दी की तरफ़ था जो उसकी जाति बताती थी। वह छोटी-सी लड़की हँसने लगी- 'फिर आप हमारे जैसे हैं!' और वह लड़की सही थी। मेरा स्कूल उसके स्कूल से बहुत अलग था। अमेरिका के स्कूल बहुत साफ और व्यवस्थित हैं। भारत में बहुत तरह के स्कूल हैं। सरकारी, प्राइवेट, हिंदी माध्यम, अंग्रेज़ी माध्यम, वगैरा। लेकिन एक चीज़ बिलकुल समान है। जैसे भारत के स्कूल जहाँ जाति की पहचान बहुत ज़रूरी है, वैसे ही अमेरिका के स्कूल में फ़र्क बहुत ज़रूरी है। मेरे जीवन में यह फ़र्क बहुत भयानक था, बल्कि वैसे ही जैसे उस लड़की लिये पीले रंग की वर्दी थी और जो उसकी जाति के बारे में दूर से ही सूचना दे देती थी।

बहुत लोग सोचते हैं कि अमेरिका में हम सब ईसाई हैं, मगर यह बिल्कुल सच नहीं है। मैं एक यहूदी हूँ लेकिन मेरा परिवार भारतीय गुरु की शिक्षाओं को मानता है और यह शिक्षा ईसाई के लिये समझना बहुत मुश्किल है। तो जब मैं स्कूल जाना शुरू कर रही थी मैं इस तरह का फर्क यानी अपने परिवार और धर्म के बारे में कुछ नहीं जानती थी। मैंने सोचा कि हम सब समान हैं। तीसरी कक्षा के पहले दिन नाश्ता खाती हुई मैं उत्साहित लग रही थी। स्कूल के अंदर जाने के बाद शिक्षिका ने कहा कि मुझे अपना परिचय दो। उसके बाद मेरी आशा थी कि मैं जल्दी से दोस्त बना लूँगी।

और कुछ दिनों के बाद यह हुआ। लेकिन मुझे एहसास हुआ कि मेरे दोस्तों की दोस्ती का इरादा नेक नहीं था। वे मुझे ईसाई में परिवर्तित करने की कोशिश कर रहे थे। एक दिन मेरी सबसे अच्छी दोस्त ने मुझे फोन किया।

'तुम को मेरे साथ चर्च आना पड़ेगा।' उसने कहा।

मैंने हठपूर्वक जवाब दिया- 'मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है चर्च जाने में।' फिर अचानक से उसने रोना शुरू कर दिया। उसने कहा कि 'अगर तुम नहीं आओगी तो हम दोस्ती नहीं कर सकते हैं। मेरी माँ ने कहा कि तुम नरक जाओगी अगर तुम चर्च नहीं जाती। उसने कहा कि जब तुम नरक जाओगी तो मैं भी नरक जाऊँगी क्योंकि मैं तुम्हारी दोस्त हूँ।'

उस पल मेरा दिल टूट गया। इसके बाद मैंने देखा कि दूसरे बच्चे मेरे साथ नहीं खेलते क्योंकि सब ऐसा मानते थे कि गैर ईसाई बच्चों के साथ खेलने की वजह से नरक जाना होगा।

इसके बाद मैं अकेली हो गई, जब तक मैं स्कूल में थी। बाद में जब मैं कॉलेज गई, वहाँ सब लोग अलग-अलग धर्म मानते थे और अलग-अलग देशों से थे।

स्कूल में मुझे यकीन था कि मेरे दोस्तों का धर्म का फर्क घिनौना था। अब मैंने सीखा है कि वास्तव में हमारे मतभेदों में सुंदरता है।

सच में अमेरिका के स्कूल के अंदर बहुत परिवर्तन नहीं हुआ है। हर साल बच्चे मारे जाते हैं स्कूल शूटिंग के दौरान। यहाँ बच्चों में मानसिक बीमारी और अवैध दवाओं का उपयोग बढ़ रहा है। भारत में और अमेरिका में शायद हमें सीखना चाहिये कि कोई भी देश दूसरे से बेहतर नहीं है। खासतौर पर जब तक हम अपने बच्चों की मौलिक शिक्षा में बदलाव नहीं लाते और उन्हें सब धर्मों का सम्मान करना नहीं सिखाते हैं। ■

यशवन्त कोठारी

हिन्दी के नामी व्यंग्यकार। चार उपन्यास, नौ व्यंग्य संकलन एवं विविध विषयों पर बीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। चर्चित उपन्यास यक्ष का शिकंजा, असत्यम्-अशिवम्-असुन्दरम्। उल्लेखनीय व्यंग्य-संकलन : कुर्सीसूत्र, हिन्दी की आखिरी किताब, राजधानी और राजनीति, लोकतन्त्र की लंगोट, सौ श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं। अन्य चर्चित रचनाओं में हैं : नेहरूजी की कहानी, साँप हमारे मित्र, 'ठ' से ठहाका, प्रकाश की कहानी, प्राचीन खेल परम्परा, आग की कहानी।

सम्पर्क : ८६, लक्ष्मी नगर, ब्रह्मपुरी बाहर, जयपुर. फोन : ०१४१-२६७०५९६ ईमेल : ykkothari3@gmail.com

संस्मरण

अमेरिका में गरीब और गरीबी

हर पांच अमेरिकी बच्चों में से एक गरीब है और अमेरिका में एक करोड़ साठ लाख बच्चे रोज भूखे सो जाते है। बी.बी.सी. हिन्दी के अनुसार इन भूखे बच्चों पर एक फिल्म भी बनाई गई है। गरीबी और गरीबी रेखा पर अमेरिका में भी भारत की ही तरह रोज बहस होती रहती है।

न्यूयार्क टाइम्स ने जनवरी में अमेरिका की गरीबी पर एक विस्तृत जानकारी पूर्ण लेख प्रकाशित किया था। वाशिंगटन पोस्ट में भी अमेरिका की गरीबी पर समाचार आये हैं। वास्तव में ४६ मिलियन लोग अमेरिका में गरीब हैं और गरीबी में जीवनयापन कर रहे हैं। गरीबी के विरुद्ध लड़ाई को अमेरिका में पचास वर्ष पूरे हो गये हैं, मगर न गरीब मिटा और न ही गरीबी मिटी है। ८ जनवरी १९६४ को अमेरिकी राष्ट्रपति लिण्डन जोनसन ने गरीबी के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की घोषणा की थी। तब से अमेरिकी प्रशासन गरीबी के विरुद्ध जंग लड़ रहा है।

पचास वर्ष पूर्व जब गरीबी के खिलाफ कार्यक्रम बनाये जा रहे थे तब प्रशासन, स्वयंसेवी संस्थाएं और कार्यक्रम थे, मगर धीरे-धीरे गरीबी की रेखा पर बहस होती रही और गरीब बढ़ते रहे। ओबामा प्रशासन भी लगातार गरीबी को खत्म करने पर काम कर रहा है मगर सफलता अभी भी अनिश्चित है। हर छः अमेरिकी लोगों में से एक गरीबी में जीवन यापन कर रहा है। गरीबी के मुख्य कारण सर्वत्र एक जैसे हैं- बेरोजगारी, बीमारी, कम भुगतान आदि। गरीबी रेखा पर बहस अमेरिका में भी जारी है और भारत में भी जारी है। नतीजे कहीं भी नहीं आये है।

> हर छः अमेरिकी लोगों में से एक गरीबी में जीवन यापन कर रहा है। गरीबी के मुख्य कारण सर्वत्र एक जैसे हैं- बेरोजगारी, बीमारी, कम भुगतान आदि। गरीबी रेखा पर बहस अमेरिका में भी जारी है और भारत में भी जारी है।

वालमार्ट, पिज्जाहट जैसी कम्पनियां न्यूनतम मजदूरी ७ से ८ डालर प्रति घंटा पर कामगार रखती हैं जो यहां के जीवन स्तर को कायम रखने में कम है। भारत में भी न्यूनतम मजदूरी बढ़ाये जाने पर बहस चल रही है और यहां भी न्यूनतम मजदूरी दस डालर करने पर विचार हो रहा है मगर यह राशि भी गरीबी को कम करने में समर्थ प्रतीत नहीं होती है। मजदूरी बढ़ने पर काम कम हो जाने का खतरा है। २००९ से २०११ के बीच में ३१६ प्रतिशत अमेरिकी गरीबी के साये में समय गुजार रहे थे। अमेरिकी गरीबी

जी रहे हैं। गरीबी के कारण अमेरिका में चिकित्सा सुविधाएं भी प्रभावित हो रही हैं। चिकित्सा अत्यन्त मंहगी है और ज्यादातर गरीब अमेरिकी चिकित्सा हेतु चिकित्सा बीमा करा पाने की स्थिति में भी नहीं है। इसी प्रकार बेरोजगारी या कम आय वाली नौकरी के कारण भी गरीबी बढ़ रही है। आम अमेरिकी व्यक्ति को बीमा, शिक्षा, घर, बिजली, बच्चों, कार, गैस, कपड़ों आदि पर काफी खर्च करना पड़ता है और बेरोजगारी या कम आय के कारण गरीब अमेरिकी पर कर्ज का वजन बढ़ जाता है। गरीबों में बीमार, असहाय, वृद्ध, विकलांग, बेरोजगार आते हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने १९८८ मे ठीक ही कहा था- हमने गरीबी के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था और गरीबी ही जीत गई। पूरी दुनिया में गरीबी ही जीत रही है। गरीबी की यह जीत हर किसी के दिल में एक टीस पैदा करती है।

भारतीय परिस्थितियों से अलग है। मगर यहाँ भी चौराहों पर तख्ती लगाकर भीख मांगते लोग हैं। होम-लेस-पुअर-हेल्प के बोर्ड दिख ही जाते हैं।

अमेरिका में गरीबी रेखा २०१२ में २३,०५० डालर प्रतिवर्ष प्रति चार व्यक्तियों के परिवार के लिए तय की गई थी। २५ वर्ष से ४० वर्ष के बीच के अमेरिकी व्यक्ति को कम से कम एक वर्ष गरीबी में जीवन यापन करना पड़ा था। अमेरिकी सेंसस ब्यूरो के अनुसार १६ प्रतिशत अमेरिकी गरीबी में रह रहे हैं। करीब २० प्रतिशत बच्चे भी गरीबी में

अमेरिका के कैलिफोर्निया में पानी का संकट है, कोलोरोडो नदी से पानी कैलिफोर्निया में घास की खेती के लिए भेजा जा रहा है और यह घास चीन को निर्यात की जा रही है। जल संकट, तेज ठण्ड, बर्फ, अकाल व विशाल रेगिस्तानी भू-भाग के कारण अमेरिकी गरीब गरीबी रेखा से ऊपर आने में असमर्थ है।

दूसरी और हर ४ अमेरिकी बच्चों में से २ बच्चे मोटापा के शिकार हो रहे हैं और मोटापा के कारण नित नई बीमारियां पैदा हो रही हैं। उच्च शिक्षा आम अमेरिकी के लिए बिना ऋण के संभव नहीं है। चिकित्सा बीमा एक भारी खर्च के रूप में अमेरिकी नागरिक को परेशान करता है। गरीब और गरीबी की यह बहस पूरी दुनिया में अनवरत जारी है। न गरीब मिटता है और न गरीबी मिटती है। गरीबी के कारण लोगों में तनाव, अनिद्रा, असुरक्षा, कम आई.क्यू., मानसिक-शारीरिक बीमारियां भी पैदा हो जाती हैं और यह सर्वत्र है।

अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने १९८८ मे ठीक ही कहा था- हमने गरीबी के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था और गरीबी ही जीत गई। पूरी दुनिया में गरीबी ही जीत रही है। गरीबी की यह जीत हर किसी के दिल में एक टीस पैदा करती है। गरीबी कम करने के लिए न्यूनतम मजदूरी बढ़ाई जाने की बहस भी जारी है। लेकिन इस दुनिया में गरीब और गरीबी हैं, थे और रहेंगे।■

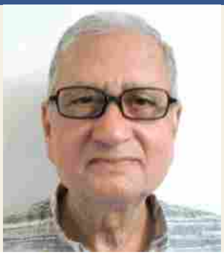

रमेश जोशी

१८ अगस्त १९४२ को चिड़ावा, राजस्थान में जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए. और रीजनल कालेज ऑफ एज्यूकेशन भोपाल से बी.एड., पोरबंदर से पोर्ट ब्लेयर तक घुमक्कड़ी, प्राथमिक शिक्षण से प्राध्यापकी करते हुए केन्द्रीय विद्यालय जयपुर से सेवानिवृत्त। संप्रति : अमरीका में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वा' के प्रधान संपादक। मूलतः व्यंग्यकार, गद्य-पद्य की ६ पुस्तकें प्रकाशित। ब्लॉग - jhoothasach.blogspot.com

संपर्क : 4758, darby court stow, OH-44224 USA Email : joshikavirai@gmail.com Tel. : 330-688-4927

जन्नत की हकीकत

विष्णु के द्वारपाल

एक ज़माना था जब अजामिल द्वारा अपने पुत्र 'नारायण' का नाम पुकारे जाने पर सचमुच के 'नारायण' विष्णु के दूत आ जाते थे और उसे यमदूतों से बचा लेते थे। जब-जब धर्म की 'ग्लानी' होती थी, 'अभिमानी' असुर बढ़ जाते थे, तब-तब धर्म को स्थापित करने और अधर्म को उखाड़ने के लिए विष्णु कोई न कोई रूप धरकर ('अवतार') चले आते थे। और मज़े की बात यह कि उन्हें भारत में नौ बार आना पड़ा। कहा जाता है कि दसवीं बार भी उन्हें आना है लेकिन इतने लम्बे गैप के बाद हमें लगता है भगवान विष्णु ने अपना प्लान चेंज कर दिया है। उनके अब न आने के बारे में हमें शक तो उसी समय हो गया था जब दो हज़ार वर्ष पहले खुद न आकर अपने बेटे को भेजा (हालांकि उनके बर्थ सर्टिफिकेट में कुछ प्रविष्टियाँ अपूर्ण हैं इसलिए हो सकता है कि सुविधा के लिए भगवान से जोड़ दिया गया हो)। उस बेटे का भी जो हाल किया गया उससे उन्होंने झंझट मोल लेना उचित नहीं समझा। उसके पाँच सौ वर्ष बाद कुछ विशेष डिमांड आई होगी जिससे उन्हें अपने प्रतिनिधि को भेजा लेकिन अपनी फैमिली में से किसी को नहीं भेजा। अब वे स्थायी रूप से अपने बैकुण्ठ 'अमरीका' में ही बस गए हैं। अब जिस भी भक्त को खुजली हो वह जाए, अब वे किसी अजामिल-फजामिल के 'नारायण' नाम से पुकारे जाने पर उल्लू बनकर दूतों को नहीं दौड़ाते।

> *उन्हें भारत में नौ बार आना पड़ा। कहा जाता है कि दसवीं बार भी उन्हें आना है लेकिन इतने लम्बे गैप के बाद हमें लगता है भगवान विष्णु ने अपना प्लान चेंज कर दिया है।*

अब तो उन्होंने सीधा संपर्क ही समाप्त कर दिया है। अब उन्होंने सभी लोकों को मिलाकर एक 'गाँव' बना दिया है जिसका नाम है 'ग्लोबल-विलेज' या 'विश्व-गाँव'। भारत उस गाँव का एक पञ्च है। और पंचों की हैसियत इस कहावत से पता चलती है- 'पंचों का कहाँ सर माथे लेकिन पतनाला वहीं गिरेगा' लेकिन हम अपनी हैसियत इस ग्लोबल-गाँव के पंचों और सरपंचों से नहीं जोड़ते। कांसीराम जी और बहिन जी के एक सही एक बटा तीन पदत्राणों से सम्मानित होकर भी हम तो अपनी हर बात सनकादिक से शुरू करते हैं। पूर्वजों के पाँच हज़ार वर्ष पहले खाए घी की खुशबू अपनी हथेलियों से आती अनुभव करते है। सो हम पिछले १४ वर्ष से विष्णु के क्लिंटन-रूप-विग्रह के समय से ही बैकुण्ठ में आते रहे हैं। प्रभु के किसी भी जय-विजय नामक द्वारपाल ने कभी नहीं रोका।

> बैकुंठ जाने का प्रसंग आते ही हमें कृष्णावतार का स्मरण हो आया जब हम सुदामा के रूप में फटे पुराने कपड़े पहने, नंगे पाँव द्वारका पहुँच गए थे और वे शर्मिंदा होकर रो पड़े थे।

५०-६० या ७० के दशक में कहीं जाते-आते थे तो लोहे के मज़बूत संदूक में पहनने के कपड़े और महत्त्वपूर्ण सामान तथा होल्डाल में गद्दा-तकिया और रजाई हुआ करते थे। एक थैले में खाने का सामान और लोटा या सुराही। बैठने को सीट नहीं मिली तो होल्डाल और लोहे की मज़बूत सदूक अर्थात पेटी बैठने के काम आते थे। एक-दो सहयात्री को सुराही में से पानी ऑफर करते तो घंटे-दो घंटे में सीट भी मिल ही जाया करती थी। लगभग सभी थर्ड क्लास में चलते थे। रिज़र्वेशन जैसा वर्ग या वर्ण भेद शुरू नहीं हुआ था। उच्च-पदस्थ सरकारी अधिकारी सूट पहनते थे लेकिन उनके उस सूट को रखने के लिए किसी विशेष संदूक का आविष्कार नहीं हुआ था इसलिए वे मज़बूरी में मनुष्य बने हुए थे। धीरे-धीरे देश विकसित होने लगा। अस्सी के दशक के शुरू में अधिकारियों के सूट रखने के लिए संदूक या पेटी का आविष्कार हुआ जिसे वी.आई.पी. सूटकेस के नाम से जाना जाता था। इसके बाद से भारत दो श्रेणियों में विभक्त हो गया। पहला लोहे की पेटी रखने वाले मनुष्य और दूसरे वह विशिष्ट सूटकेस रखने वाले अर्थात वी.आई.पी.। हम न तो अपने लिए वी.आई.पी. सूटकेस खरीद सके और न ही हर्षद मेहता की तरह किसी के यहाँ सूटकेस पहुंचा सके इसलिए मास्टर ही बने रहे। इन सूटकेसों की क्षमता अभी तक अमापी ही है। कोई भी आज तक नहीं बता पाया कि जिसमें एक करोड़ रूपए रखकर ले जाए गए थे उसका माप क्या था?

सन २००० हजार में बेटों ने अमरीका आने का आग्रह किया। हो सकता है यहाँ होते तो चार-धाम की यात्रा का प्रस्ताव रखते। लेकिन जो हुआ अच्छा ही हुआ। अमरीका तो साक्षात् भगवान विष्णु का लोक है। क्या रखा चार धाम में? बैकुंठ में भगवान विष्णु के चरणों में तो चार क्षण भी गुज़ार लिए तो मोक्ष तय है।

बैकुंठ जाने का प्रसंग आते ही हमें कृष्णावतार का स्मरण हो आया जब हम सुदामा के रूप में फटे पुराने कपड़े पहने, नंगे पाँव द्वारका पहुँच गए थे और वे शर्मिंदा होकर रो पड़े थे। अबकी बार हमने तय किया कि बैकुंठ ढंग से चलेंगे। अपने प्रभु की इज्जत का सवाल है। टिकट तो बच्चों ने भेज दिए थे लेकिन हमने भी अपने पी.एफ. से लोन लेकर उस समय के सबसे महँगे और बड़ी साइज़ के पहियों वाले चार वी.आई.पी. सूटकेस ख़रीदे। उस समय एक सूटकेस की कीमत सोलह सौ रूपए थी। दोनों ने चार-चार नई ड्रेसें सिलवाईं। लिबर्टी के जूते और चप्पल ख़रीदे। इतनी रईसी तो शादी में भी नहीं थी। खैर, बैकुंठ पहुंचे लेकिन मजाल कोई द्वारपाल पूछ भी ले। सब वी.ई.पी. सूटकेस का चमत्कार था। पासपोर्ट पर सील लगवाकर बाहर निकल रहे थे तो एक कर्मचारी ने 'वेलकम टू अटलान्टा' भी कहा था।

भले ही पाठकों की रुचि न हो लेकिन हम बनियान की 'अन्दर वाली बात' की तरह सूटकेस की अन्दर वाली बात न बताएँ तो हमारे सूटकेस का महत्त्व आपकी समझ में नहीं आ सकता। हमने १९६० में प्राइमरी स्कूल मास्टर से लेकर, व्याख्याता और इंग्लिश मीडियम पब्लिक स्कूल के वरिष्ठ अध्यापक तक के इंटरव्यू धोती की चौड़ी किनार से बने थैले में प्रमाण-पत्र, कपड़े और सब्जी-रोटी रखे-रखे दे दिए और सलेक्ट भी हो गए। लेकिन जब १९७५ में केन्द्रीय विद्यालय का इंटरव्यू देने तत्कालीन बंबई गए तो अपने छोटे भाई के एक मित्र से एक छोटा-सा सूटकेस माँग कर ले गए थे। उस समय न तो लोग ऐसी चीजें माँगने में संकोच करते थे और न ही लोग इतने बेमुरव्वत हुए थे कि मना कर दें।

इसके बाद हम जब १९७९ में जयपुर से केंद्रीय विद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक का इंटरव्यू देने भोपाल गए तो, वी.आई.पी. का तो नहीं लेकिन किसी परनामी बैग कंपनी का ७५ रुपए का सस्ता-सा, गत्ते पर रेगाजीन चढ़ा बैग ख़रीदा था। उस समय जयपुर से भोपाल के लिए शाम को सीधी बस जाती थी जो अगले दिन सुबह आठ बजे पहुंचती थी। सुबह जब भोपाल उतरे तो बैग बस की जालीनुमा टांड से निकलने का नाम ही न ले। जब हम बैग निकालने में सफल नहीं हुए तो बस के ड्राइवर से जो युवा था, मदद ली। उसने जोर लगाया तो सूटकेस वहीं रहा लेकिन हैंडल उसके हाथ में। हमें लगा जैसे शिवाजी ने अपने बघनखे से अफ़ज़ल खान की आंतें निकाल ली हों। खैर, किसी तरह हैंडल रहित सूटकेस को भी निकाला। अब बिना हैडल के ले कैसे जाएं। ड्राइवर राजपूत था सो दुखी ब्राह्मण पर दया करते हुए उसने अपने किसी आपातकालीन काम के लिए रखी एक मोटी रस्सी हमें सूटकेस बाँधने के लिए दे दी। यदि उसकी जगह हमारे द्वारा पूर्व-जन्म में पाँच हजार वर्ष पहले सताया गया कोई होता तो क्या होता? हमने रस्सी बंधे सूटकेस को बगल में दबाया और इंटरव्यू स्थल पहुँच गए और सूटकेस के प्रभाव से सलेक्ट भी हो गए।

यदि लक्ष्मी की कृपा हो तो वैकुंठ जाना कठिन नहीं था। टिकट खरीदो और जाओ। लेकिन जब से यह मुआ ओसामा नमक दैत्य हुआ है प्रभु कुछ अतिरिक्त चौकन्ने हो गए हैं। होना भी चाहिए। अब वैकुंठ में आने वालों की भली प्रकार, ठोक-बजाकर अच्छी तरह चेकिंग होने लगी है। लेकिन हम पर प्रभु का स्नेह यथावत बना रहा।

हम प्रायः फ्रेंकफर्ट होते हुए आते हैं और लुफ्तांसा नामक जर्मन कंपनी के जहाज से। २०१२ में ऐसा हुआ कि वांच्छित तिथियों में जो टिकट उपलब्ध थे वे कनाडा होते हुए व किसी अन्य कंपनी के थे। जब तेईस अप्रैल २०१२ को रात साढ़े-दस ग्यारह बजे बंगलोर हवाई अड्डे पर पहुंचे तो कनाडा का वीज़ा

दिखाने को कहा गया। पिछले दस वर्षों से सारे मध्य-एशिया और योरप के ऊपर से उड़ते हुए जाते रहे हैं लेकिन किसी ने वीजा की बात नहीं की और अब यह कनाडा नाम की लंकिनी हमारे हवाई जहाज की छाया को पकड़कर खींच रही है। खैर, वह टिकट वापिस हुआ और नया टिकट दस दिन बाद का मिला। लग गई बीस हज़ार की चपत। जब दस दिन बाद दुबारा अमरीका आए और फिलाडेल्फिया में सामान चेक करवा रहे थे तो उस अधिकारी ने पूछा- आपने दस दिन पहले भी तो टिकट बुक करवाई थी फिर आए क्यों नहीं? हमें लगा- अवश्य प्रभु हमारी अगवानी करने कनाडा पहुंचे होंगे और हमें वहाँ न पाकर उन्हें कितना बुरा लगा होगा? हमारे मन की वही हालत हो गई जो विदुर की पत्नी की कृष्ण को अपने घर पधारे देखकर हुई थी। तब से हम अपने को प्रभु का खास भक्त मानने लगे हैं।

कहते हैं अशोक और चन्द्रगुप्त ज़माने में लोग अपने घरों को ताले नहीं लगाते थे। हो सकता है कि उस युग में तालों का आविष्कार नहीं हुआ था या चोर शातिर और ढीठ हुआ करते थे कि ताला लगाना और न लगाना एक बराबर ही था। आधुनिक युग में यह बात प्रभु के बैकुंठ में देखी। आदेश है कि बैकुंठ आने वाले भक्त अपने सूटकेस के ताला नहीं लगाएं। पहले कपड़े और चेन वाले सूटकेस थे। इस बार जब ७ मार्च २०१४ को आना था तो देखा कि सूटकेसों की चेनें खराब। सोचा चलो वे सन २००० वाले चार बड़े वाले सूटकेस ले चलते हैं। ताला न लगाने की शर्त थी और यह डर भी कि बिना ताले अगर कहीं सूटकेस खुल गया तो? सो इसका उपाय निकाला गया कि सब सूटकेसों के चारों तरफ मोटी रस्सी बाँध देंगे।

२०-२२ घंटे बाद वाशिंगटन डी.सी. में फ़टाफ़ट सामान लेकर क्लीवलैंड वाली फ्लाईट में दिया। जल्दी में ध्यान ही नहीं गया दिया लेकिन जब क्लीवलैंड में ध्यान से देखा तो पाया कि जहां वास्तविक वी.आई.पी. का भी केविटी टेस्ट हो सकता है तो सूटकेस के बल पर वी.आई.पी. बने एक मास्टर के सामान की क्या औकात? जिन सूटकेसों को अपने पसीने की गाढ़ी कमाई से ख़रीदा और बच्चों की तरह गोद में रखकर पिछले चौदह वर्षों से खरोंच तक लगने से बचाते हुए आ रहे हैं उनका यह हाल? इससे तो अच्छा यह सब इस नश्वर देह के साथ हो गया होता। देह तो 'वासांसि जीर्णानि...' की तरह भगवान पुरानी होते ही फिर नई दे देते लेकिन यह सन २००० में सोलह सौ रुपये में ख़रीदा हुआ वी.आई.पी. का सूटकेस!

एक सूटकेस की रस्सी गायब, एक के बेतरतीब टेप लगी हुई, एक का एक पहिया दूसरे का साथ इस तरह निभा रहा है जैसे अरविन्द केजरीवाल के साथ दिल्ली में कांग्रेस। एक को इस निर्दयता से बंद किया गया कि उसकी हालत महाभारत सीरियल के शकुनी जैसी हो रही थी। महाभियोग के समय निक्सन और क्लिंटन के चेहरे की शोभा भी कुछ इसी तरह की रही होगी। एक ही झटके में अखंड भारत का स्वरूप वर्तमान भारत जैसा हो गया था। अचानक हम १९७७ वाली कांग्रेस और १९८४ वाली भाजपा जैसे निरीह हो गए।

सोचते हैं, जब अगली बार आएँगे तो वी.आई.पी. तो दूर, 'आम आदमी' सूटकेस भी नहीं लाएँगे। एक बेडशीट में सामान बाँध लेंगे या फिर वैसे जैसे उद्धव ब्रज से चले थे- एक हाथ में यशोदा का दिया मक्खन और एक हाथ में राधा द्वारा दी गई बांसुरी।

हमें १९७९ की भोपाल की वह सुबह याद आई जब हम रस्सी बंधा सूटकेस लेकर दाल-मिल के पास केंद्रीय विद्यालय संगठन के कार्यालय में इंटरव्यू देने पहुंचे थे। ३५ वर्षों बाद इतिहास की यह कैसी पुनरावृत्ति है?

लगा सुदामा को द्वारपाल ने रोका ही नहीं बल्कि धक्के मार-मारकर सड़क के बीचों-बीच फेंक दिया है। सादगी का यह सम्मान। मोदी के विकास और सुशासन के आश्वासनों की तरह अन्दर एक छपी हुई पर्ची मिली जिस पर लिखा हुआ था- 'स्मार्ट सिक्योरिटी सेव्स टाइम' और भी कुछ अन्य औपचारिक बातें जैसे कि यह सब आप और आपके सहयात्रियों के बचाव के लिए। अरे भले आदमियो, यह होती है स्मार्टनेस? ऐसे बचता है टाइम? क्या तुम्हारी मशीनें किताबों, कपड़ों, अचार, टॉफी और मिठाइयों तक को नहीं पहचानतीं? हमारे यहाँ तो लोग उड़ती चिड़िया के पंख गिन लेते हैं भले ही इस चक्कर में चिड़िया की बीट उनकी आँखों में ही आ गिरे। लेकिन एक बात ख़ुशी की है कि भले ही सामान की दुर्गति हो गई हो लेकिन खोया कुछ नहीं। और हमें किसी भी तरह अबुलकलाम, अडवाणी, जार्ज फर्नान्डीज़ और शाहरुख की तरह सम्मानित नहीं किया गया। वैसे कर भी देते तो हम क्या कर सकते थे?

सोचते हैं, जब अगली बार आएँगे तो वी.आई.पी. तो दूर, 'आम आदमी' सूटकेस भी नहीं लाएँगे। एक बेडशीट में सामान बाँध लेंगे या फिर वैसे जैसे उद्धव ब्रज से चले थे- एक हाथ में यशोदा का दिया मक्खन और एक हाथ में राधा द्वारा दी गई बांसुरी।

वैसे हम अपनी सरकार की तरह लोकतांत्रिक और सकारात्मक संबंधों के प्रति प्रतिबद्ध हैं, छोटी-मोटी बातें हमें विचलित नहीं कर सकतीं जैसे किसी को एक व्यक्ति ने थप्पड़ मारा। उस व्यक्ति ने पूछा- क्या तुमने मुझे सीरियसली थप्पड़ मारा?

उसने कहा- हाँ।

तब ठीक है, मुझे मज़ाक बिलकुल पसंद नहीं है।

फिर थप्पड़ पड़ा तो उसने फिर पूछा- क्या तुमने मज़ाक में थप्पड़ मारा?

उसने कहा- हाँ।

तो कोई बात नहीं, अगर सीरियसली मारते तो बताता।■

सन्ध्या सिंह

हिन्दी साहित्य से एम.ए. और बी.एड.। सिंगापुर में हिन्दी सोसाइटी के मार्फत स्वयंसेवक के रूप में उच्च माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ाया। विगत १४ वर्षों से सिंगापुर में हिन्दी प्रचार-प्रसार में सक्रिय भूमिका। सिंगापुर की एन.पी.एस. अन्तर्राष्ट्रीय पाठशाला में हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं एन.यू.एस. में हिन्दी व्याख्याता के तौर पर काम किया। विभिन्न पत्रिकाओं में आलेखों का प्रकाशन।

सम्पर्क- sandhyasingh077@gmail.com

सिंगापुर में 'लिटिल इंडिया'

भारत से हज़ारों मील दूर एक छोटे से द्वीप पर अगर आपको यह नाम सुनाई दे तो अचम्भा भले ही न हो पर एक पल के लिए मन कुछ सोचने पर मजबूर अवश्य हो जाएगा। १८वीं शताब्दी विश्व मानचित्र पर अहमियत रखता हो या नहीं पर भारत व भारतीयों के जीवन के एक ऐसे पन्ने की शुरुआत करता है जिसने भारतीयों के साथ 'प्रवासी' शब्द को जोड़ने में अहम भूमिका निभाई। सिंगापुर का लिटिल इंडिया (सरेंगुन रोड) वही क्षेत्र है जिसे भारतीय प्रवासियों के लिए ब्रितानी शासन के जातीय विभाजन के आधार पर बनाया गया था ताकि भारतीय यहाँ निवास कर सकें। सन् १८१९ में कैदियों के रूप में शुरुआती अनुचर पूर्वी उत्तरप्रदेश और उत्तरी पश्चिमी बिहार से लाए गए जो धोबी, दूधवाला, चायवाला और घरेलू नौकर के रूप में सेवा देने लगे। यहीं से शुरुआत हुई हिन्दी बेल्टवालों की आवाजाही की। हाँ ये बीच-बीच में कम ज़रूर होती रही पर एक कड़ी बन गई थी जो अब तक ज़ारी है। हालाँकि स्वतंत्र सिंगापुर में प्रजातीय एकता व सौहार्द्र पर काफ़ी बल दिया गया और यही कारण है कि आज भारतीय सिंगापुर द्वीप के कोने-कोने में बसे हुए हैं।

एक लोकप्रिय सिंगापुर यात्रा गाइड के अनुसार 'आप भारत तीन तरीके से पहुँच सकते है; हवाई यात्रा, समुद्री यात्रा और सरेंगुन रोड (लिटिल इंडिया) तक पैदल चलकर।' इसका मतलब तो साफ़ हुआ कि भारत की कुछ 'खास खूबियाँ' यहाँ भी आपको मिल जाएँगी तो सिंगापुर में अगर कहीं गाड़ियों का भोंपू सुनाई दे, बिना यातायात सिग्नल के लोग सड़क पार करते दिखें, लोगों की बातचीत की ध्वनि पूरे वातावरण में समा रही हो, भारतीय मसालों और चमेली के फूलों की खुशबू से वातावरण सुगंधित हो रहा हो, कहीं तोते से आपका भविष्य बताने की सिफ़ारिश चल रही हो तो समझ लीजिए कि आप लिटिल इंडिया पहुँच गए हैं।

भारतीय संस्कृति को संरक्षित रखने का पूरा प्रयास इस क्षेत्र में दिखाई देता है। बात चाहे भारतीय परिधानों की हो चाहे गहनों की। तमाम ऐसी दुकानें मिल जाएँगी जो साड़ियाँ, सलवार-क़मीज़, सोने-चाँदी के पारम्परिक गहने, बिन्दी, चूड़ियाँ, श्रृंगार के सामान बेचती हैं। और सबसे खास तो है लोगों का हुज़ूम जो इन

> *एक लोकप्रिय सिंगापुर यात्रा गाइड के अनुसार 'आप भारत तीन तरीके से पहुँच सकते हैं; हवाई यात्रा, समुद्री यात्रा और सरेंगुन रोड (लिटिल इंडिया) तक पैदल चलकर।'*

चीज़ों को खरीदने और पहनने के प्रति आज भी उतना ही आकर्षित दिखाई देता है, जबकि भारत में कुछ ज़्यादा आधुनिकता दिखने लगी है।

मानव कुछ करे ना करे पेट-पूजा तो अवश्य करता है और इसके लिए अगर उसे कोई कष्ट भी उठाना पड़े तो नहीं चूकता पर सिंगापुर में तो भारतीयों की खाने-पीने के मामले में चाँदी है। जहाँ पूरे द्वीप पर उसे दुनिया के हर कोने के लज़ीज़ व्यंजन मिल जाते हैं वहीं खासतौर पर लिटिल इंडिया में हर तरह के भारतीय व्यंजनों का चाट-पापड़ी और गोलगप्पों से लेकर इडली-डोसा, कबाब, जलेबी-रबड़ी तक का लुत्फ़ उठाया जा सकता है। बनाना लीफ़ अपोलो नामक एक दक्षिण भारतीय रेस्तराँ तो विदेशियों में इतना लोकप्रिय है कि आपको रेस्तराँ में भारतीयों से ज़्यादा विदेशी ही दिखाई देंगे। कई भारतीय रेस्तराँ की कड़ियाँ भी यहाँ हैं जिनमें भारत के उसी स्वाद का आनन्द उठाने के लिए भारतीयों की कतार नज़र आती है।

लिटिल इंडिया के मंदिरों को नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता। इतने भव्य और स्वच्छ मंदिर जहाँ हर छोटे-बड़े त्योहार को मनाने की कोशिश रहती है। चाहे बात शिवरात्रि की हो या होलिका दहन की, सम्पूर्ण विधि-विधान से इनका आयोजन तो होता ही है साथ ही नित्य-पूजन के प्रति भी काफ़ी लगाव देखा जा सकता है। भारतीयों के लगभग हर हफ़्ते लिटिल इंडिया आने का एक मुख्य कारण भगवान के दर्शन करना भी है। यहां बसे भारतीयों का ऐसा मानना है कि इसी बहाने कुछ भगवत भजन हो जाएगा और घर के सामान की खरीदारी भी। वैसे चाहे दक्षिण भारतीय हों या उत्तर भारतीय, अपनी व्यस्त दिनचर्या से कुछ समय निकालकर सप्ताह में एक बार मंदिर जाने का प्रयास करते हैं जो भारतीय संस्कृति के विदेश में भी जीवित रहने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। लिटिल इंडिया में कई दुकानें हैं जो लकड़ी के बने सुन्दर नक्काशीदार मंदिर बेचती हैं, हालाँकि इनके दाम आसमान छूते हैं और लोगों के घर भी भारत जैसे बड़े नहीं है, फिर भी लोगों के घरों में इन नक्काशीदार मन्दिरों का होना दिखाता है कि आज भी यहाँ भगवान के प्रति एक अटूट विश्वास की सीढ़ी बरकरार है।

शनिवार और रविवार को यह इलाका काफ़ी चहल-पहल भरा रहता है। कई बार तो आपको लगेगा कि अरे, बिना टिकट ही मैं भारत पहुँच गया? चाहे पूजा-पाठ हो, राशन की खरीदारी हो, साग-सब्ज़ी लेनी हो, पारम्परिक कपड़े, सजावट की चीज़ें लेनी हो; लोग लिटिल इंडिया का ही रुख करते हैं। रविवार को तो यहाँ आम जनता कम दिखाई देती है पर यह भारतीय मजदूरों का गढ़ बन जाता है। हफ़्ते भर एक अनजाने देश, अनजाने वातावरण, अनजानी बोली के बीच कड़ी मेहनत करने के बाद इन मजदूरों को भी अपनेपन की ललक लिटिल इंडिया खींच लाती है, जहाँ वे न सिर्फ़ अपने यार-मित्रों से मिलते हैं और रोज़मर्रा के कामों से राहत भी लेते हैं।

"शनिवार और रविवार को यह इलाका काफ़ी चहल-पहल भरा रहता है। कई बार तो आपको लगेगा कि अरे, बिना टिकट ही मैं भारत पहुँच गया? चाहे पूजा-पाठ हो, राशन की खरीदारी हो, साग-सब्ज़ी लेनी हो, पारम्परिक कपड़े, सजावट की चीज़ें लेनी हो; लोग लिटिल इंडिया का ही रुख करते हैं।"

शायद यही छोटी-छोटी खूबियाँ हैं जो इतने भारतीयों को सिंगापुर न सिर्फ़ खींच लाती हैं बल्कि स्थानीय परिवेश से इस प्रकार हिला-मिला देती हैं कि कई बार लगने लगता है कि यह अपना दूसरा घर ही है। आज यहाँ की आबादी में लगभग ८-९ प्रतिशत हिस्सा भारतीयों का शायद इसी कारण है और कुछ की जड़ें तो इस कदर गहराई तक समा गई हैं कि उन्हें तो यही अपना लगता है। सिंगापुर में भारतीयों और लिटिल इंडिया का साथ चोली-दामन के साथ की तरह ही एक-दूसरे की महत्ता को दर्शा रहा है।■

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'
१ नवम्बर १९६२ के समशेर नगर, बहादुर गंज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश में जन्म। विगत दो दशकों से साहित्य सृजन में सक्रिय। 'दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ' पुस्तक प्रकाशित। शिरोमणि सम्मान (साहित्य, कला परिषद जालौन) तथा तुलसी सम्मान (मानस स्थली, सूकरखेत, उत्तर प्रदेश) से सम्मानित। सम्प्रति- आचार्य, हिन्दी विभाग, गुआंगदांग अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, ग्वान्जाऊ, चीन।
सम्पर्क : dr.gunshekhar@gmail.com

सैलानियों का स्वर्ग

कल जिस भी बाज़ार गया वहाँ तिल रखने की जगह नहीं थी। हर गली, सड़क सजी-धजी और बसों और टैक्सियों से लदी-फँदी थी। निजी वाहन इक्का-दुक्का ही दिखे। सभी ज़गहों पर सार्वजनिक वाहनों का बोलबाला देख मन खुश हुआ कि चलो यहाँ का हर नागरिक काम में लगा है। केवल बाहरी सैलानी ही हैं जो बाज़ारों को आ जा रहे हैं। सर्वत्र उपभोक्ता ही उपभोक्ता। उत्पादन यहाँ का मूल चरित्र ही नहीं है। यहाँ का मूल चरित्र उपभोग है। वस्तु से लेकर देह तक का खुला निमंत्रण। यहाँ जैसे सब कुछ बिकने के लिए ही बना है। बाज़ारवाद का पूरा प्रभाव यहाँ देखा जा सकता है। जब लड़कियाँ आपको खींच-खींच कर सामान बेचेंगी तो भला कब तक मना कर पाएँगे। चार गुना कीमतें वसूलना तो यहाँ आम बात है। यह सत्य सभी जानते हैं फिर भी कुछ न कुछ खरीदते अवश्य हैं। अंततः मैंने भी एक छाता लगभग पाँच सौ रुपए में खरीद ही लिया। रात साढ़े ग्यारह बजे जब यहाँ की मशहूर ज़गह 'स्टारफेरी' जा रहा था, एक नवयौवना ने हौले से कंधे पर हाथ रख दिया। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो डर गया। उसने बेसाख्ता कहा, 'डू यू नीड सेक्स?' मैंने 'नो' कहकर आगे बढ़ जाना ही उचित समझा। लेकिन जाते-जाते भी उसने 'मसाज' के लिए मंद-मंद मुस्कान सहित आग्रह भरा अनुरोध जारी रखा। मैं यही सोचते-सोचते पाँव आगे बढ़ा रहा था कि कितना खुलापन है यहाँ! शायद इतना कि नंगे को भी नंगा कर दे। स्टार फेरी पहुँचने पर दो मद्रासी युवक मिले। उनमें से एक तो यहाँ का बचपन से बासिन्दा है और दूसरा टूरिस्ट। जब उनसे मैंने यह किस्सा बयाँ किया उनमें से एक ने बताया कि 'अगर आप थाईलैंड जाएँ तब तो और दुखी होंगे। वहाँ तो इससे भी बड़ा नंगा नाच होता है। एक बार वहाँ जाके आएँ तो फिर आप ही होंगकोंग को स्वर्ग कहेंगे। 'मुझे भी सैलानियों का स्वर्ग जैसा तो ज़रूर लगा होंगकोंग, पर खतरों से भरा हुआ। बगल में नरक को सजाए हुए। वह भी एक ऐसा स्वर्ग जो किसी को भी और कभी भी नीचे धकेल सकता है।' स्टार फेरी से वापसी में भी रास्ते भर इस मद्रासी युवक जैसे इस सभ्यता का आचमन करने वालों को नमन करता रहा।

'स्टारफेरी' का पता किसी भले से नहीं बल्कि वहाँ से पाँच सौ मीटर दूर जहाँ मैं ठहरा था उसी 'कुंचिन मेंसन' के बेसमेंट के जुआरियों से मिला था। नीचे उतर कर खुले में जुआ चलते देखकर बड़ी हिम्मत करके मैंने उनमें से एक युवक से पूछ लिया कि क्या यहाँ का कानून लचर है? उसने कहा, 'इंडिया से हजार गुना बेहतर है।' इसका जवाब देने को तो दे सकता था लेकिन दिया नहीं। मैं सोचने लगा कि मेरे देश में हो रहे नृशंस हत्याओं और सामूहिक बलात्कार के काण्ड तो यहाँ भी पहुँचते ही होंगे। यदि इन्होंने वह उदाहरण दिया तो अपनी नैतिकता पानी-पानी हो जाएगी। उस भारतीय युवक ने हिन्दी में बोलना शुरू किया तो बोलता ही चला गया, 'यातायात के लिए ऊपर बस और टैक्सी, नीचे एमटीआर (मेट्रो), गज़ब का ड्रेनेज सिस्टम और सफ़ाई अव्वल दर्ज़े की। इंडिया इतनी क्राउड को देखकर ही पगला जाएगी। कहीं एक भी पट्टी तक नहीं। सिगरेट सभी पिएँगे लेकिन उसे डालेंगे कचरा पेटी में ही। क्या यह सब इंडिया में संभव है अंकल जी?' कहने को मैं यहाँ भी कह सकता था कि यह मैनेजमेंट नैतिकता के बलबूते कम पंद्रह सौ डालर के जुर्माने के बल पर ज़्यादा दिखता है। लेकिन इस लिए चुप लगा गया कि कहीं यह मुँहफट लफंगा यह न कह दे कि इसीलिए यहाँ धारावी भी

नहीं है। दूसरे यह कि जुआरियों-शराबियों के मुँह कौन लगे? यही सोचकर वहाँ से चलने लगा तो उसी ने कहा ,'पास में ही 'स्टारफेरी' है उसे अभी देख लो और सवेरे 'कोवलून पार्क' ज़रूर देखना।'

'स्टार फेरी' से लौटने पर पाया कि वे जुआरी तितर-बितर हो चुके थे। लेकिन जाते समय तो वे यही बोले थे कि रात भर यहीं पर रहते हैं। जाते समय ही उनके हिन्दी गाने सुने थे। इन गानों में इन्होंने कुछ संशोधन किए थे। ज़गह-ज़गह शरीर के पवित्र अंगों के नाम डाल दिए थे। वे शायद इसलिए निर्भय थे कि यहाँ हिदी कौन समझेगा। लेकिन क्या उन्हें यह होश नहीं होगा कि कितने भारतीय सैलानी यहाँ आते हैं। उनके साथ पूरा परिवार होता है। ये भी किसी न किसी परिवार से हैं। लेकिन इन्हें इन सब बातों की परवाह न थी। वे बस जोर-जोर से गाए चले जा रहे थे। उनकी सुरक्षा के लिए कान में बीस-पच्चीस ग्राम की बाली डाले उनका सरदार भुजाओं की मछलियों को रह-रह के प्रदर्शित कर रहा था। उस सरदार ने हमसे भी, 'अंकल फ्लावर?' कह जुआ खेलने का आमंत्रण दिया। पहले तो मैं कुछ समझा ही नहीं फिर भी एक झटके में 'ना' कहकर जान छुड़ा ली। अगले दिन होंगकोंग डालर को ध्यान से देखने पर पता चला कि उसमें एक तरफ़ फूल बना है। उस समय समझ में आया कि सिक्का उछालते समय शायद वह मुझसे फूल पर कुछ लगाने के लिए कह रहा था।

कल सस्ता होटल ढूँढने के चक्कर में कहीं डेढ़ सौ डालर गिरा दिए थे। जीवन में कभी योजना बनाकर काम नहीं किया। उसी का खामियाजा भुगतता रहता हूँ। यह मेरेलिए कोई नई बात नहीं थी। नई बात यह थी कि कहीं होटल वाला मेरी निद्रावस्था में न ले गया हो। मुद्रा और सामान गिराते रहना मेरी फ़ितरत में तो है लेकिन ठगे या ठगाए जाना नहीं। थका बहुत था। लेकिन कहीं सस्ते होटल भी हैं यह सुन कर कोलंबसी यात्रा पर निकल पड़ा था। सच में जहाँ पहुँचा वह सस्ता आवास तो दिलाने में सफल रहा। लेकिन साथ ही डेढ़ सौ डालर का नुकसान भी उठाया। हुनग होम और मोंगकोंग घूम-घूमकर चकनाचूर हो गया था। चला ही नहीं जा पा रहा था। पैरों को किसी तरह घसीट-घसीट के और तमाम साधन बदल-बदल के कम किराए के रूम के लालच में वहाँ पहुँचा था। शरीर के मना करने पर भी उससे ज़बर्दस्ती की थी तो परिणाम तो भुगतना ही था। लेकिन इस 'चिम सा चुई' जिसे रोमन में 'tsim sha tui' जैसा लिखकर दर्शाया जाता है में पहुँचकर 'चुंकिंग मेंसन' आदि में दो-ढाई सौ होंगकोंग डालर में एक रूम आसानी से मिल जाता है जो दूसरे इलाकों में पाँच-छह सौ से शुरू होता है। यहाँ आकर सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि होंगकोंग के उस चरित्र से भी परिचित हुआ जिससे वहाँ वंचित रह जाता। इसके अलावा जब यहाँ दाल-

"होंगकोंग आकर यह भी समझ में आ गया कि चीन के द्वारा उसे अपनाए जाने के बाद भी चीनियों के लिए वीज़ा की अनिवार्यता क्यों है? शायद चीनी नेतृत्त्व कुबेर का खज़ाना भरे होंगकोंग को चीन में तो देखना चाहता था लेकिन अपनी संस्कृति की कीमत पर नहीं।"

रोटी पैंतीस डालर की थी तो उन स्टार होटलों के आस-पास एक आइटम ही इतने में मिलता होगा। एक यह भी बचत यहाँ आने से हुई। काफ़ी रात गए तक पैसे गिराने की चिंता में जागता रहा। मन को भले समझाता रहा कि यहाँ सैलानी बनके आया हूँ व्यापारी नहीं। कहाँ बचत के पचड़े में पड़ गया? यहाँ आने वाला पैसे की परवाह नहीं करता और मैं हूँ जो डेढ़ सौ डालर में ही जान दिए दे रहा हूँ। कितना भी समझाया पर, यह मध्यम वर्गीय मन कसमसाता ही रहा। संभवत: तीन-चार बजे के बीच देह के आगे मन की डोर ढीली हुई और मैं नींद की गोद में चला गया।

इसी तीन से चार बजे के बीच ही सीसी टीवी कैमरों से लैस होटल के भीतर सुरक्षित बिस्तर पर भी नीचे के जुआरियों का सरदार ध्यान में आता रहा। उसका ड्रग बेचने का खुला ऐलान भी डराता रहा। लगे कि उसके पास मेरी ही तरह इस रूम का डुप्लीकेट कंप्यूटर कार्ड और पासवर्ड हो सकता है। कभी भी आके वह मेरे बचे-खुचे चार-पाँच सौ डालर छीन सकता है। मुझे अच्छी तरह याद आ रहा था कि उसके श्रीलंकाई साथी ने कहा था, 'अंकल ड्रग के बिना होंगकोंग लंगड़ा हो जाएगा। चल ही नही पाएगा। यहाँ हर तरह के टूरिस्ट आते हैं। जिसको जो चाहिए किसी भी कीमत पर उसे वह देता ही है होंगकोंग, अल्ला मियाँ की तरह।' इस चर्चा के दौरान सरदार की जूठी सिगरेट लेने के लिए सब युवक चंचल हो रहे थे। सरदार के बाद एक-एक फूंक सभी ने मारी थी। बाहर से सिगरेट जैसी दिखने वाली वह चीज़ निश्चय ही कोई न कोई ड्रग रही होगी। वरना ऐसे ही कोई थोड़े न इतना उतावला होता है। दूसरे एक सिगरेट को दस-दस लोगों को पीते हुए कहीं कभी देखा भी नहीं था। इन्हें इस दशा में देखकर अभी हाल में पढ़ा मधु कांकरिया के उपन्यास 'पत्ताखोर' का नायक बहुत याद आया। इनमें से हर लड़का उस उपन्यास का नायक लग रहा था। वहाँ एक ही पत्ताखोर था जो खुद बिगड़ कर अपनी शिकार की तलाश में रहता था। यहाँ तो ऐसों का जमावड़ा है। जब एक साथ इतने नवयुवकों को बिगाड़ने में जुट जाएँगे तो बचेगा कौन और बचाएगा भी कौन? होंगकोंग की सुन्दरता को इस प्रश्नवाचक से घिरा पाकर मैं चिंतित तो हुआ लेकिन निराश नहीं। शायद मेरी तरह जल्दी ही किसी नेता की भी समझ में यह बात आए और इसका यह प्रश्नवाचक हट जाए। यहाँ आकर यह भी समझ में आ गया कि चीन के द्वारा उसे अपनाए जाने के बाद भी चीनियों के लिए वीज़ा की अनिवार्यता क्यों है? शायद चीनी नेतृत्त्व कुबेर का खज़ाना भरे होंगकोंग को चीन में तो देखना चाहता था लेकिन अपनी संस्कृति की कीमत पर नहीं।■

प्रभु जोशी

१२ दिसंबर, १९५० देवास के गाँव पीपलरावां में जन्म। जीवविज्ञान में स्नातक तथा रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर के उपरांत अंग्रेज़ी साहित्य में भी प्रथम श्रेणी में एम.ए., अंग्रेज़ी की कविता स्ट्रक्चरल ग्रामर पर विशेष अध्ययन। पहली कहानी १९७३ में धर्मयुग में प्रकाशित। 'किस हाथ से' लंबी कहानियाँ तथा 'उत्तम पुरुष' कथा संग्रह प्रकाशित। हिंदी दैनिक नईदुनिया के संपादकीय तथा फ़ीचर पृष्ठों का पाँच वर्ष तक संपादन। बचपन से चित्रकारी करते हैं एवं जलरंग में विशेष रुचि। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का कथा-कहानी के लिए अखिल भारतीय सम्मान। साहित्य के लिए गजानन माधव मुक्तिबोध फेलोशिप। संप्रति: स्वतंत्र लेखन एवं पेंटिंग।

संपर्क : ४, संवाद नगर, इन्दौर। मोबाइल : ०९४२५३-४६३५६ ईमेल : prabhu.joshi@gmail.com

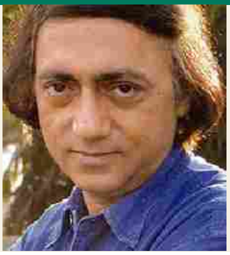

परिहास के बघनखों के नीचे

कुछ महीनों से टेलिविजन और फिल्मों के ख्यात-चरित्र अभिनेता आलोकनाथ को लेकर, लगभग पूरी उत्तर भारतीय युवा पीढ़ी, द्वारा सोशल-मीडिया पर की जा रही विनोदी टिप्पणियों का एक अम्बार-सा लगा हुआ है। वे टिप्पणियां मूलतः हिन्दी में ही हैं। बहरहाल, उस अम्बार को खँगालकर देखने पर लगता है कि क्या इसे हम इस पीढ़ी का सिर्फ 'हास्यबोध' भर मानकर आगे बढ़ लें या कि इस पर तनिक ठिठक कर किंचित धैर्य के साथ सोचें कि क्या वाकई इसका प्रकट-अप्रकट आशय हैं, जिनको हम इस 'मनोरंजनग्रस्त' समय की धुंध में ठीक से पढ़ पाने में असफल हो रहे हैं। आप हम सब, यह जानते ही हैं कि दूरदर्शन के 'बुनियाद' धारावाहिक के बाद से ही आलोकनाथ द्वारा अभिनीत अधिकांश पात्रों की छवियों को चरितमूलक-दृष्टि से देखें तो हमें यह साफ दिखायी पड़ता है कि एक खास किस्म के संस्कारों का वे; न केवल 'प्रतिमानीकरण' करते हैं बल्कि उनका आदर्शीकरण भी करते हैं। इसलिए, वे केवल चरित-नायक भर नहीं हैं, बल्कि, एक विशिष्ट सांस्कृतिक-स्थिति के लिए विनम्रता के साथ लड़ते, ऐसे केन्द्रीय-पात्र हैं, जो अपनी व्यक्त-अव्यक्त पीड़ा और प्रश्नों से बिंधे हुए हैं। वे 'मूल्यों' के विघटन से, अपने दग्ध-अंतःकरण में अभी भी 'सहृदय' बनकर सामना कर रहे हैं। 'करुणा' और 'मानवीयता', उन पात्रों की रीढ़ है। प्रश्न उठता है कि क्या वे मूल्य, जिनमें 'संस्कार' और 'सहृदयता' एक महत्वपूर्ण घटक की तरह हैं, अब सिफ 'हास्यास्पद' होने के लिए ही अभिशप्त हैं? क्या हमें चाहिये कि हम इस स्थिति पर 'पैराडाइम-शिफ्ट' का आवरण डालकर व्यर्थ में सिर खपाने से स्वयं को बचा लें?

"आलोकनाथ केवल चरित-नायक भर नहीं हैं, बल्कि, एक विशिष्ट सांस्कृतिक-स्थिति के लिए विनम्रता के साथ लड़ते, ऐसे केन्द्रीय-पात्र हैं, जो अपनी व्यक्त-अव्यक्त पीड़ा और प्रश्नों से बिंधे हुए हैं।"

दरअसल, यह आकस्मिक नहीं कि नब्बे के दशक के बाद से, बाहर से आती पूंजी के वर्चस्व ने हमें पश्चिम से एक नया 'सांस्कृतिक-विनियम' सिखाया। उसने भारतीय मध्यमवर्गीय समाज को आमतौर पर तथा उसकी युवा पीढ़ी को खासतौर पर यह पाठ पढ़ाया कि आपके पास 'इतिहास का बोध' नहीं, बल्कि 'इतिहास का बोझ' है। आप सांस्कृतिक कुली हैं। अतीत बकवास और उसका संरक्षण या संवर्धन आत्मघात है। वह इक्कीसवीं सदी के लिए शुरू हुई दौड़ का गतिरोधक है। उसे कांधे से उतार फेंको। हटाओ या नष्ट करो। कहने की जरूरत नहीं कि आपका जो कुछ भी परम्परागत था, उसे इक्कीसवी सदी में सिराने के लिए ललकारा जाने लगा। विज्ञापन-फिल्मों और धारावाहिकों में इक्कीसवीं सदी का उल्लेख लगभग धमकी की तरह किया जाने लगा, जैसे इक्कीसवीं सदी में शामिल होने की यह प्राथमिक शर्त है कि आप अपने विगत के 'सर्वस्व' को स्वाहा कर दो; नहीं तो किसी जघन्य अपराध के भागीदार हो जाओगे। इक्कीसवीं सदी को सहसा इतना

‘ज्ञान-समृद्ध’ कहा जाने लगा, जैसे कि बीती-सदी निपट मूर्खताओं की सदी रही है और आपके तथाकथित परम्परागत मूल्य उसी सदी के हैं, जिन्हें आप मृतकों की तरह कंधे पर ढोते रहोगे तो इस उत्तर आधुनिक समय में पिछड़ जाओगे।

कहने की जरूरत नहीं कि बहुत ही जल्द इन मूल्यों को धरोहर की तरह मानने वाला ‘मध्यवर्ग’ का यह उमर-रशीदा या पात्र, जो घर का लगभग मुखिया की हैसियत से था और संस्कारों के संरक्षण और संवर्द्धन में अपने दायित्व की पहचान कर रहा था- वह युवा वर्ग में ‘विदूषकीय’ हो गया। वह सांस्कृतिक-मलबे का मालिक बन गया। उससे असहमति; युवा होने की पहचान बन गयी। घर से बाहर के संसार में नये का ‘अभिनंदन’ और पुराने का ‘दमन’ आधुनिकता का अनुबंध बनने लगा। समाजशास्त्री अपने अकादमिक विवेक से इस परिवर्तन को ‘पीढ़ियों के द्वन्द्व’ की तरह व्याख्यायित करने लगे। जबकि, बुनियादी रूप से यह पीढ़ियों के द्वन्द्व का मसला नहीं बल्कि ‘सांस्कृतिक-अपहरण’ की शुरुआत थी। क्योंकि, नयी मुक्त-बाजार वाली आर्थिकी भारतीय घरों में, ‘फैशन और उपभोग’ को ही अपना अभीष्ट मानने वाली, ‘मार्केट-फ्रेण्डली इंडिविजुअल’ का निर्माण कर रही थी, जिसके लिए परिवार के भीतर चले आ रहे अन्तर-संबंधों के परम्परागत ढांचे का ध्वंस जरूरी था। यही वह समय था, जब ‘निजता’ को युवा पीढ़ी के बीच आत्यन्तिक मूल्य बनाया जाने लगा। ‘प्रायवेसी’ का प्रश्न युवावर्ग के बीच इस सीमा तक बना कि, ‘सामूहिकता’ के या कि ‘संगठन’ के प्रश्न, अमानवीय कहाने लगे। पिता युवकों के लिए निकटस्थ शत्रु हुआ और माँ युवती की ईर्ष्यालु और झगडालू चौकीदार! घर यातना शिविर कहे जाने लगे। यही वह जगह है जहां से ‘संस्कारों’ और ‘सहृदय’ पात्रों को परिहास का केन्द्र बनाया जाने लगा, क्योंकि, ‘पितृसत्तात्मकता’ के खाप-पंचायती वाले पात्रों से तो बेलिहाज भिडन्त से फैसले किये जा सकने में आसानियाँ थीं। मगर करुणा, ‘संस्कारयुक्त-सहृदयता’ से निबटने की दिक्कतें थी। इसलिए ‘परिहास’ ही एक भद्र-हिंसा के रूप में कारगर उपकरण बना और ये पात्र चौतरफा दाँत-निपोरने के कच्चे माल में बदल दिये गये। मसखरी के धंधे पर चलने वाले टेलिविजनी कार्यक्रमों में, ऐसे पात्रों को ‘मिमिक्री’ के जरिए खारिज किया जाने लगा। संस्कारवान दिखना ही लज्जास्पद होने लगा। माँ, बाप और बहन जैसे पारिवारिक पात्रों, का हाशियाकरण होने लगा। इनकी उपस्थिति ही पुराने का परिचायक बन गई। इधर विज्ञापन-फिल्मों में, एक नया टेलिजिनिक बाप, ‘संस्कारी-बाप’ के बरअक्स ज्यादा लोकप्रिय बनाया जाने लगा। वह साठ साल का बूढ़ा नहीं, साठ-साल का जवान कहलाने लगा। अपने ‘पितृत्व’ की

> संस्कार और नैतिक-संकोच अब नई पीढ़ी के लिए दाँत निपोरने का कच्चा माल है। वह एक रोग है। एक हास्यास्पद लत है। दरअसल हास्य के बघनखे से संस्कार नहीं बल्कि आपके मूल्यों को ही निबटाने का उपक्रम है। यह ‘विचारहीनता का विचार’ है। यह नया सांस्कृतिक पाठ है।

संजीदगी को झाड़कर इतना ‘फ्रेण्डली’ होने लगा कि बेटे की जींस में कण्डोम रखकर, क्लोज-शॉट में मुस्कराने लगा। वह, मां के बजाय कहीं ज्यादा मार्डन दिखने के लिए बेटे और बेटी के लिए ‘ब्वाय फ्रेण्ड’ की जुगाड़ में दिखने लगा। टेलिजिनिक मां की भी गढ़न्त हुई। वह बेटी से ज्यादा हॉट दृष्टिगोचर होने लगी है और जींस पहनने से हॉट होने वाली बेटी की छवि से होड़ में ‘लैंगीज’ धारक बनने लगी। ‘संस्कार’ और ‘मर्यादा’ शब्द नई पीढ़ी के लिए बड़े अपशब्द घोषित हुए। सहमति से होता सेक्स, मां की नजर में कदाचरण की परिधि से बाहर आया और युवती के गर्भवती होने पर मां का गुस्सा इस पर टूटने लगा कि ‘हाय’ तूने ‘अनवाण्टेड-२००’ गोली क्यों नहीं ली?

याद करें कि ‘जी’ शब्द ‘कार्पोरेट कल्वर’ में, एक ‘लिटल-टाऊन मेण्टेलिटी’ और ‘कॉलोनियल लैग्विज टेबू’ है। ‘फर्स्टनेम’ से पुकारने की प्रथा के सम्मान में, ‘जी’ की बलि आवश्यक थी। यह फ्रेश-लिग्विस्टिक जेस्चर है। अतः आलोकनाथ द्वारा अभिनीत पात्रों द्वारा ‘जी’ का उपयोग खालिस फूहड़पन की तरह लेते हुए ‘परिहास’ का कारण बन रहा है। कुल मिलाकर, ‘उपभोग और फैशन’ को युवा-जीवनशैली का निर्णायक बनाने और बताने वाली इक्कीसवीं सदी की ‘सांस्कृतिकता’ ने कहना शुरू कर दिया है कि ‘अब भारत में एक नई सभ्यता का उदय हो रहा है। वह इस समाज को अधिक उन्नत और सुरुचिपूर्ण बना रही हैं। वह सम्पन्नता के द्वार खोल रही है। अतः सभी निकट अतीत के तमाम मूल्य फूहड़ और त्याज हैं।’ यही वजह है कि मूल्यों की बात करने वाले को ही डपट पर कहा जाता हैं ‘डोण्ट स्पीक इन मॉरली लोडेड वक्युब्लरि’। यही वह सच है, जिसका सामना करते हुए, कई बार टेलिविजन का एंकर पूछता है कि, ‘डिड यू स्लीप विद अ गर्ल आफ योर डाटर्स एज?’ वह इस प्रश्न से ही हक्का-बक्का रह जाता है। तब एंकर उसके संस्कृति-संकोच को तोड़ने के लिए उकसाता है और कहता है ‘कम आऊट ऑफ दिस पिट... यू ऑर विक्टिम आव मॉरल फोबिया.....।’ जी हां संस्कार और नैतिक-संकोच अब नई पीढ़ी के लिए दाँत निपोरने का कच्चा माल है। वह एक रोग है। एक हास्यास्पद लत है। दरअसल हास्य के बघनखे से संस्कार नहीं बल्कि आपके मूल्यों को ही निबटाने का उपक्रम है। यह ‘विचारहीनता का विचार’ है। यह नया सांस्कृतिक पाठ है।■

उदयन वाजपेयी

जन्म १९६० सागर, मध्यप्रदेश। चर्चित कवि-कहानीकार। कहानी संग्रह- सुदेशना, दूर देश की गन्ध, कविता संग्रह- कुछ वाक्य, पागल गणितज्ञ की कविताएँ, एक निबन्ध संग्रह, फिल्मकार मणिकौल के साथ उनके सम्वाद की पुस्तक 'अभेद आकाश' प्रकाशित। कृतियों का तमिल, बंगाली, मराठी, फ्राँसीसी, पोलिश, बुल्गारियायी, स्वीडिश, अँग्रेजी आदि में अनुवाद। कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप और रज़ा फाउण्डेशन पुरस्कार से सम्मानित।

संपर्क : एफ-९०/४५, तुलसीनगर, भोपाल-४६२००३ ई-मेल : udayanvajpeyi@gmail.com

कॉलमकार की बानी

कॉलम लेखक यानि कॉलमकार की हमारे समाज में क्या भूमिका हो सकती है? आखिर वह अपने छोटे-बड़े कॉलम किसके लिए लिखता है, किसके लिए लिख सकता है? मन्त्रियों के लिए या सामान्य जनता के लिए? अफसरों के लिए या बौद्धिकों के लिए? व्यापारियों के लिए या उपभोक्ताओं के लिए? चिकित्सकों के लिए या बीमारों के लिए? कलाकारों के लिए या कला-रसिकों के लिए? आधुनिक मनीषा के लिए या पारंपरिक मेधा के लिए? कार्पोरेट घरानों के लिए या कृषकों के लिए? बैंकरों के लिए या साहूकारों के लिए? हम इस सूची को इतना लम्बा करते जा सकते हैं कि वह इस कॉलम के बाहर निकल जायें। यह सूची लिखने का इतना ज़रा सा आशय है कि हम यहाँ यह रेखांकित करना चाह रहे हैं कि धीरे-धीरे हमारी पत्रकारिता मनुष्य मात्र को संबोधित होने की जगह मनुष्यों के समूहों को - जिन्हें टी.जी. (टार्गेट ग्रुप) कहा जाता है- संबोधित करने लगी है। उसके लिए मनुष्य किसी विशेष समूह का उदाहरण भर है, अपने में कोई विशिष्ट सत्ता नहीं। भारत जैसे देशों में जहाँ हज़ारों की संख्या में विभिन्न सम्प्रदाय या समूह रहते हैं, लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक बुनियादी कार्य इन विभिन्न सम्प्रदायों या समूहों के बीच सामन्जस्य स्थापित करना रहा है। चूंकि पत्रकारिता लोकतांत्रिक व्यवहार को बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण साधन है इसलिए ऐसा माना जाता है कि उसे व्यक्ति को संबोधित करने की जगह समूहों को संबोधित करने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में हमारे देश की पत्रकारिता की दुनिया में हर भारतीय नागरिक एक व्यक्ति होने के स्थान पर किसी न किसी समूह के सदस्य की तरह है। यह ऊपर से सुन्दर लगता तर्क दरअसल ग़लत है। समूह के एक सदस्य की तरह स्वयं को पहचानने के कहीं पहले हर मनुष्य खुद को सबसे अलग और अद्वितीय प्राणी की तरह अनुभव करता है। अपने को इस अद्वितीय प्राणी की तरह अनुभव करने के बाद ही वह खुद को किसी समूह या समुदाय के सदस्य की तरह परिभाषित करता है। इस तरह हर मनुष्य के अन्तरतम् में उसके अद्वितीय होने की चेतना का वास हुआ करता है। इसी चेतना के सहारे वह समूह में या फिर सामूहिक जीवन में

> *हमारी पत्रकारिता मनुष्य मात्र को संबोधित होने की जगह मनुष्यों के समूहों को - जिन्हें टी.जी. (टार्गेट ग्रुप) कहा जाता है- संबोधित करने लगी है। उसके लिए मनुष्य किसी विशेष समूह का उदाहरण भर है, अपने में कोई विशिष्ट सत्ता नहीं।*

भागीदारी करता है। उसकी अद्वितीय होने की इस चेतना का तिरस्कार करके उसे किसी समूह का - कैसे भी समूह का जीवन्त सदस्य नहीं बनाया जा सकता। अगर ऐसा किया जाता है तो वह पूरा मनुष्य न रह जाकर इक तरह का कटा-फटा प्राणी हो जाता है जो अपने विवेक के लिए, अपनी निर्णय बुद्धि के लिए, अपनी सृजनात्मक सामर्थ्य के लिए समूह पर निर्भर हो जाता है मानो प्रकृति ने उसे स्वयं विचार करने की शक्ति दी ही न हो, मानो वह केवल विचारों का निष्क्रिय ग्राहक भर हो, उन्हें उत्पन्न करने की उसमें क्षमता ही न हो। ऐसे कटे-फटे विवेकहीन प्राणी पर तमाम तरह की बाहरी शक्तियाँ नियंत्रण कर उससे अपने तरह-तरह की स्वार्थ साधने लगती हैं। उदाहरण के लिए राजनैतिक क्षेत्र में कोई भी ऐरा-गेरा उठकर उसकी ओर से बोलने लगता है मानो उसकी अपनी कोई आवाज़ ही न हो। यही नहीं वह उसकी ओर से बोलकर अपने हित साधता है। कोई हिन्दुओं की ओर से बोलता है, कोई मुस्लमानों की ओर से, कोई दलितों की ओर से बोलता है, कोई मजदूरों की ओर से। देश की आज़ादी के बाद से लोकतंत्र के नाम पर यही होता रहा है। हम अपने अधिकांश सम्बोधनों में अपने देश के नागरिकों को व्यक्ति या अद्वितीय मनुष्य की तरह सम्बोधित करने की जगह उसे किसी समूह के सदस्य मात्र की तरह सम्बोधित करते रहे हैं।

हर मनुष्य जाने-अनजाने एक स्तर पर अपने एकमात्र होने की चेतना के साथ जीता है और वही एक दूसरे स्तर पर अपने को एक या एक से अधिक समूह या समूहों के सदस्य की तरह भी बरतता है। हर मनुष्य में यह दोनों स्तर एकसाथ क्रियाशील रहते हैं। इनमें से किसी भी एक की अवज्ञा उसे कमज़ोर बनाती है इसीलिए हर सम्बोधक (वह विचारक हो या कॉलमकार) का यह दायित्व है कि वह अपने हर पाठक को अद्वितीय भी माने और किसी विशेष समूह का सदस्य भी। वह उसे ऐसे सम्बोधित न करे कि उसकी अद्वितीयता का तिरस्कार हो और न ऐसे ही कि उसके सामुदायिक बोध की अनदेखी हो। लोकतांत्रिक संवाद तभी संभव हो सकेगा। तभी समाज में लोकतंत्रिक व्यवहार का आधार सुदृढ़ हो सकेगा।

कोई हिन्दुओं की ओर से बोलता है, कोई मुस्लमानों की ओर से, कोई दलितों की ओर से बोलता है, कोई मजदूरों की ओर से। देश की आज़ादी के बाद से लोकतंत्र के नाम पर यही होता रहा है। हम अपने अधिकांश सम्बोधनों में अपने देश के नागरिकों को व्यक्ति या अद्वितीय मनुष्य की तरह सम्बोधित करने की जगह उसे किसी समूह के सदस्य मात्र की तरह सम्बोधित करते रहे हैं।

मैं यह नहीं जानता कि मैं ऐसे कॉलम लिख पाऊँगा या नहीं जो मेरी अपनी अपेक्षा के अनुरूप हों। मेरा प्रयत्न वही होगा। अपने चारों ओर घट रहे सामान्य जीवन में जो कुछ भी मुझे अपने देश के लोकतांत्रिक व्यवहार को प्रश्नांकित करता जान पड़ेगा, उसे मैं विचारार्थ अपने पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करूंगा। मैं यह बिल्कुल नहीं चाहूँगा कि मेरे पाठक मेरे विचारों से अभिभूत हों। मेरी कोशिश यह होगी कि वे यह कॉलम पढ़कर स्वयं अपने ढंग से विचार करने की ओर प्रवृत्त हों। अगर हमारा यह लोकतंत्र विराट रंगमंच है तो उसमे कॉलमकार की भूमिका 'प्रोम्टर' की नहीं, लाईट्समेन की है, या लाउडस्पीकर की ताकि साधारण नागरिक अपने व्यवहार को ध्यान से देख सकें, ताकि सामान्य नागरिक अपनी आवाज़ ध्यान से सुन सकें।■

ध्रुव शुक्ल

११ मार्च १९५३ को सागर में जन्म। कवि-कथाकार के तौर पर पहचान। 'उसी शहर में' और 'अमर टॉकीज' उपन्यास, 'खोजो तो बेटी पापा कहाँ हैं', 'फिर वह कविता वही कहानी', 'एक बूँद का बादल', 'हम ही हममें खेलें' कविता संग्रह, 'हिचकी' कहानी संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रपति द्वारा कथा एवार्ड और कला परिषद् के रज़ा पुरस्कार से सम्मानित।

सम्पर्क : एम.आई.जी.-५४, कान्हा कुँज, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) ईमेल - kavi.dhruva@gmail.com

सबसे कठिन काम

अपने आपको निर्दोष साबित करना जीवन का सबसे कठिन काम है। आदमी दुनिया की अदालतों में अपने-अपने वकील लगाकर निर्दोष साबित होने के लिए खड़ा है। तरह-तरह की अरजियों और जिरह के बीच न्याय स्थगित होता चला जाता है। आदमी एक के बाद एक अदालतों की सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते थका हुआ-सा मालूम पड़ता है। न्यायालयों में पहुँचते ही अनुभव होता है कि जैसे हम किसी मण्डी में खड़े हैं। जहाँ वकील अपनी-अपनी गुमटियाँ सजाये बैठे हैं।

कौन दोषी है और कौन निर्दोष है, यह साबित करने के लिए दो कटघरों के बीच थोड़ी ऊँची कुर्सी पर एक तीसरा आदमी आसीन है, जिसके सामने यह प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं दोषी नहीं हूँ। खूँखार अपराधी, पेशेवर लुटेरे और अब तो राजकाज संभालने वाले नेता और प्रशासक भी अपने आपको निर्दोष साबित करने में लगे हुए हैं। वे मँहगे वकीलों की फीस चुकाकर एक के बाद एक बड़ी अदालतों की सीढ़ियाँ चढ़ते चले जा रहे हैं। कभी कोई निचली अदालत उनकी दलीलों के झाँसे में आकर उन्हें निर्दोष मान लेती है तो कभी कोई ऊँची अदालत उन्हें दोषी करार देकर सजा सुना देती है। वे फिर जमानत लेकर उससे भी ऊँची अदालत में चले जाते हैं।

साधारण जनों के बीच झगड़े और दोषारोपण एक आम बात है। वे अपने झगड़े आपस में आज भी निपटा लेते हैं। पर जब नहीं निपटा पाते तो वे भी वकील करते हैं और अदालतों के चक्कर लगाते-लगाते उनकी ज़िन्दगी बीत जाती है। यह भी देखने में आता है कि एक पीढ़ी के मुकदमे दूसरी और तीसरी पीढ़ी में भी चलते रहते हैं। अदालतें, वकील और न्यायाधीश बदलते जाते हैं। पर लड़ने वालों का मन नहीं बदलता। वे पीढ़ी दर पीढ़ी लड़ते ही चले जाते हैं।

आजकल देश में राजकाज में पनपते जा रहे भ्रष्टाचार के खिलाफ खूब आवाज़ें उठ रही हैं। देश में किसी एक दल का राज नहीं हैं। कई दल जैसे-तैसे मिल जुलकर राजकाज

> कौन दोषी है और कौन निर्दोष है, यह साबित करने के लिए दो कटघरों के बीच थोड़ी ऊँची कुर्सी पर एक तीसरा आदमी आसीन है, जिसके सामने यह प्रमाणित करना पड़ता है कि मैं दोषी नहीं हूँ।

संभालते हैं। कौन किससे और कब मिल गया है, कुछ पता ही नहीं चलता। सब अपने-अपने दोष छिपाकर एक-दूसरे को कांधा दिए हुए हैं। कब कौन अपना कांधा हटा ले यह भी जान लेना मुश्किल है। सब दोषी होकर एक-दूसरे पर आरोप लगाये चले जा रहे हैं और बड़ी ही चतुराई से एक-दूसरे का साथ भी निभा रहे हैं।

सरकारें बदल जाती हैं। कुछ चेहरे यहाँ-वहाँ हो जाते हैं पर राजकाज में बढ़ती जाती बेईमानी का अंत ही नहीं होता। वे एक-दूसरे पर आरोप लगाया करते हैं कि जब आप राज चलाते थे तो आप भी यही करते थे। यानी जनता सरकार को इसलिए नहीं बदलती कि बेईमानी कम हो। वह शायद इसलिए बदलती है कि बारी-बारी से सबको बेईमानी करने का सुनहरा अवसर मिलता रहे।

कभी-कभी यह भली प्रकार अनुभव में आता है कि ये सब के सब साम-दाम से सत्ता में ही बने रहना चाहते हैं क्योंकि सत्ता इनके अपराधों को ढाँके रहने में सहायता भी पहुँचाती है। ये आपस में एक-दूसरे के अपराधों को छिपाकर भी अपनी राज्य शक्ति को बढ़ाया करते हैं। ये एक-दूसरे को यह विश्वास दिलाये हुए हैं कि हम आपस में एक-दूसरे के दोषों को छिपाये रखकर राजकाज में भागीदार बने रहेंगे। ये एक-दूसरे के विरुद्ध अदालतों में भी खड़े हैं और सिर्फ़ अपने लिए न्याय माँग रहे हैं। जिन्हें जनता के प्रति न्याय करने के लिए चुना जाता है वह न्याय देने में ये खुद ही असमर्थ हैं।

ज्ञानी कहते ही आये हैं कि आदमी का स्वभाव गुण और दोषों से सना हुआ है। वह अनेक प्रकार की इच्छाओं और स्वार्थ से भरा हुआ है। वह अपने लिए दया का मूल्य रचता है और स्वभाव से हिंसक है। वह सबके दुख में काम आये यह उसकी अभिलाषा है पर अपने सुख की कीमत पर नहीं। बिरले ही होते हैं जो परमार्थ के लिए जीते हैं। ज्यादातर मानव जाति अपने स्वार्थ के लिए ही जीती है। इसीलिए अकेले आदमी पर राज्य चलाने का भार सौंपना कितना खतरनाक हो जाता है। आदमी के गहरे स्वार्थ को ही पहचानकर हम धीरे-धीरे लोकतंत्र की ओर बढ़ते आये हैं।

पंचायतें, ग्रामसभाएँ, विधान और लोक सभाएँ जब मिलकर फैसला करेंगी तब किसी एक आदमी के स्वार्थ की पूर्ति होना मुश्किल हो जायेगा। इसी से लोकहित का विस्तार होगा। पर यह सपना हमारी ही आँखों के सामने टूट रहा है। हम देख रहे हैं कि लोकतंत्र के नाम पर गठित किये जाने वाले समूह बड़े-बड़े स्वार्थी गिरोहों का रूप ले चुके हैं। वे लोकहित के नाम पर अपने स्वार्थों को साधने में सफल हो रहे हैं। उनके पास इतनी धन-सम्पदा है कि वे सत्ता में बने रहने के लिए लोकतंत्र का मनमाना नाटक रच सकते हैं। वे ही निर्माता, पटकथा लेखक और निर्देशक हैं। वे एक-दूसरे के पोस्टर फाड़कर भी इस लोकतंत्र की डर्टी पिक्चर को विधान और लोकसभाओं के चित्रपट पर चला रहे हैं।

> *दुनिया की सारी अदालतें न्याय करते-करते थक गयी हैं। लगता है कि जो आदमी जिस किसी भी अन्याय से बंधा है उसी को अपने प्रति न्याय मान बैठा है। जब दो लोग आपस में लड़ते हैं तो अच्छी तरह जानते हैं कि दोषी कौन है। फिर इसमें तीसरा क्या न्याय करेगा।*

अगर कोई कभी अपने एकान्त के क्षणों में अपने आपसे ही पूछ बैठे कि वह एकमात्र प्रश्न कौन-सा है जिसका उत्तर आदमी को खोज लेना चाहिए तो निश्चय ही यह अनुभव में आयेगा कि आदमी सब कुछ बदलना चाहता है। संसार को बदल देने की चाह उसके मन में तो है पर क्या कारण है कि आदमी अपने-आपको नहीं बदल पाता। दुनिया की सारी अदालतें न्याय करते-करते थक गयी हैं। लगता है कि जो आदमी जिस किसी भी अन्याय से बंधा है उसी को अपने प्रति न्याय मान बैठा है। जब दो लोग आपस में लड़ते हैं तो अच्छी तरह जानते हैं कि दोषी कौन है। फिर इसमें तीसरा क्या न्याय करेगा।

कभी-कभी लगता है कि आदमी ने जैसे ज़िद ही बाँध ली है कि वह दोषी होने के बावजूद भी अपनी पूरी जिन्दगी दोष सिद्ध होने से बचने में ही गुजार देगा। अपने-अपने दोष छिपाकर आखिर हम अपने देश और दुनिया को कब तक चला पायेंगे। रोज थकी-थकी-सी दिखने वाली धरती हमसे निर्दोष जीवन की माँग कर रही है।■

सुधा दीक्षित

मथुरा में जन्म। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। कविता एवं सृजनात्मक लेखन में विशेष रुचि। सम्प्रति - बंगलुरू में रहती हैं।

सम्पर्क : sudha_dixit@yahoo.co.in

रमता जोगी झाड़ी प्रदेश में

घुमक्कड़ी का शौक़ हमें विरासत में मिला है। पिताश्री चूँकि सरकारी अफसर थे, घूमना-फिरना जरा आराम और STYLE के साथ होता था। गर्मियों की छुट्टियाँ मसूरी, नैनीताल या शिमला जैसे पहाड़ों पर गुज़रती थीं (केवल उत्तरप्रदेश के पहाड़ क्योंकि अब्बाजान up cadre के थे)। हर तीन साल के बाद एक नये शहर में तबादला होने से नया स्कूल, नये दोस्त, नये पड़ोसी और नयी सभ्यता से परिचय लाज़मी था। वैसे यह सरकारी नौकरी भी आदमी को आधा ख़ानाबदोश तो बना ही देती है। रही सही कसर अस्थिर, चंचल मन पूरी कर देता है। भारत-भ्रमण तो ख़ैर पिताजी ने ही करवा दिया था। समंदर पार जाने की इच्छा हमारे दिल में समुद्री लहरों की तरह ज्वार-भाटा मचाने लगी। पासपोर्ट, वीसा और डॉलर के मसलों ने चचा ग़ालिब की याद दिला दी -

'हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले', किन्तु 'ओम शांति ओम' जपते ही (शाहरुख ख़ान वाली फिल्म देखिये) हमें अहसास हुआ कि जब आप किसी चीज़ को शिद्दत से चाहते हैं तो सारी कायनात उसे आपसे मिलाने की कोशिश में जुट जाती है। इतनी लंबी बात को हमारी माँ चार लफ़्ज़ों में बयाँ कर देती थीं- 'जहाँ चाह वहाँ राह।' हमारी चाहत भी रंग लाई। पासपोर्ट का मसला एक बेटी ने हल कर दिया, डॉलर का इंतज़ाम दूसरी बेटी ने कर दिया। भला हो कंडक्टेड टूर का, अकेले सफ़र करने की ज़हमत से भी बच गये। पैरों में चक्कर था ही। बस हमने एक नहीं बारी-बारी से सातों समंदर पार कर लिए।

दक्षिण एशिया और पश्चिम योरप घूमने के बाद मन हुआ 'चलो ऑस्ट्रेलिया' (चलो दिल्ली की तर्ज़ पर)। पूछो ऑस्ट्रेलिया ही क्यों? भई वो इसलिए कि यह योरप और अमरीका से थोड़ा अलग है। यह एक देश अपने आप में पूरा महाद्वीप (continent) है। इस महाद्वीप का एक बड़ा हिस्सा WA (Western Australia) कहलाता है, जिसे Bushland अर्थात झाड़ी-प्रदेश भी कहते हैं। यहाँ की राजधानी पर्थ है। तो इस बार की मंज़िल-ए-मक़सूद बनी पर्थ यानी झड़ी-प्रदेश। लेकिन झड़ी-प्रदेश ही क्यों? इसके लिए आपको हमारी परिस्थिति और फलस्वरूप मनस्थिति की जानकारी देना आवश्यक होगा। परिस्थिति तो सीधी-सादी है- हमारी बेटी वहाँ है। अब तीन महीने कोई होटल में थोड़े ही रहता है। मनस्थिति थी कि कुछ हट कर देखें, कुछ adventure करें। सिडनी, मेलबर्न, गोल्ड कोस्ट, क्वीन्सलॅड और ब्रिसबेन आदि स्थान तो आपको conducted tour वाले भी दिखा देते हैं, लेकिन कोई tourist agency आपको रेगिस्तानी झाड़ी प्रदेश नही दिखाती। और 'जहाँ ना जाए रवि, वहाँ जाए कवि', तो

"समुद्र के किनारे औरतों का हुजूम बिकिनी में घूमता-फिरता है– शाम के वक़्त भी। अजनबी लोगों से भी वे मुस्कुरा कर हेलो कहकर निकल जाती हैं। यह बिल्कुल सामान्य व्यवहार है।"

हमारे कवि मन ने हमें W A explore करने को कहा, और लो हम आ गये पर्थ।

चौबीस दिसंबर बंगलोर हवाई अड्डे पर Christmas eve की धूम थी। हम खुश हुए की पच्चीस दिसंबर यानी main Christmas के दिन हम ऑस्ट्रेलिया में होंगे। खूब मज़ा आएगा। मगर पर्थ के हवाई अड्डे पर ऐसी कोई गहमा-गहमी नज़र नहीं आई। सोचा celebration तो शहर में होता है, airport पर थोड़े ही कोई उत्सव मनाता है। बहरहाल बाहर निकले, सुई-पटक सन्नाटा। घर की ओर रवाना हुए– खाली सड़कें और घनघोर शांति। हमने बिटिया से पूछा- 'आज क्रिसमस है ना?' वह बोली- 'हाँ, यहाँ हर त्योहार घर के अंदर होता है।' सोचा चलो रात को तो ज़रूर रौनक होगी, बाहर जाएँगे। रात को बिटिया ने पूरा इंतज़ाम घर पर किया हुआ था। सज़ा-सँवरा Christmas tree, उपहारों से लदा, चारों ओर भाँति-भाँति के बिजली के रंग-बिरंगे बल्ब। घर के पिछवाड़े बगीचे में स्थित gazebo में wine और खाने-पीने का सामान सजा रखा था। टीवी के पर्दे पर Sidney fire-work show चल रहा था। हमने पूछा पर्थ में ऐसा कुछ नहीं होता? नहीं, बात खत्म।

अगले दिन शहर-भ्रमण का प्रोग्राम बना। कन्या ने प्यार से liimousne का इंतज़ाम किया, साथ में wine वगैरह, यानी रौब जमाने के लिए पूरा इस्टाइल-भाई आयोजन कर रखा था। खैर उस दिन love at first sight वाली कहावत कारगर हो गयी। समुद्र से घिरा रेगिस्तानी इलाक़ा, मगर मजाल है कि रेत का एक कण भी नज़र आ जाए। पक्की, चिकनी सड़कें और घरों के आगे हरी घास का कालीन, तेज़ हवा पर कोई धूल नहीं। हैयाली और रास्ता, कार की गति का हवा से वास्ता! बस हमें एक शेर याद आ गया -

दीदार की तलब के तरीक़ों से बेख़बर
दीदार की तलब है तो पहले निगाह माँग

जी हाँ, beauty lies in the eyes of beholder. पर्थ का सौंदर्य उसकी सादगी में है। सिडनी का ओपेरा-हाऊस बहुत प्रसिद्ध है तो अपना lotus-temple भी कुछ कम नही है। ऊँची, गगनचुंबी मीनारें (sky-scrappers) तो आपको अमरीका, दुबई आदि अनेक स्थानों पर नज़र आएँगी। पर्थ में बंग्लेनुमा मकान एक या कभी-कभी दो माले के होते हैं, बस। घर के पीछे भी बागीचा, घर के आगे भी बागीचा, हरियाली ही हरियाली। सीमेंट के जंगलों में वो बात कहाँ जो प्रकृति-प्रदत्त वन-उपवनों में है। फलों से लदे बागों की सैर करने के पाँच डॉलर लगते हैं। फल थैलों में भरकर रखे होते हैं, कीमत की पर्ची के साथ। कोई देखने या पूछने वाला नहीं, बस पैसे रखो और थैला उठा लो। चोरी कभी नहीं होती। वाइन बनाना ऑस्ट्रेलिया का कुटीर-उद्योग है। जगह-जगह पर winery मिलेगी। यहाँ wine-tasting होती है। आप सिर्फ़ चख भी सकते हैं और खरीद भी सकते हैं। (कुछ लोग तो चखते-चखते ही टुन्न हो जाते हैं)। हम भी इस्टाइल-भाई बन कर वाईन चखने गये। बड़े प्यार और इज़्ज़त से आपको वाईन पिलाई जाती है। यह कहने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी -

पिला दे ओक से साक़ी जो हमसे नफ़रत है
पियाला गर नहीं देता ना दे, शराब तो दे

शराब पीना यहाँ की national problem है। क़ानूनन १८ साल के कम के बच्चे शराब नही पी सकते, लेकिन जैसे इश्क़ और मुश्क छुपाए नही छुपते, शराब और शबाब छुटाये नही छूटते। घर में माँ-बाप 'हर शब पिया ही करते हैं, मय जिस क़दर मिले', तो बच्चे कैसे अछूते रह सकते हैं। वो भी कहते हैं–

साक़ी की हर निगाह पे बल खा के पी गया
लहरों से खेलता हुआ लहरा के पी गया

ऊपर से तुर्रा यह कि आप बच्चों को ना तो डाँट सकते हैं ना ही उन पर हाथ उठा सकते हैं। कोशिश भी की तो सीधे हवालात की हवा खानी पड़ सकती है। एक स्थान पर बड़ा-सा बोर्ड लगा था "Save children from abusive parents'.

भाई वाह मन हुआ कि हम भी एक पर्ची चिपका दें 'Save parents from indisciplined & rowdy children'.पर हम ठहरे परदेसी, हमें क्या? तुम्हारा देश है, तुम संभालो। वैसे भी १८ साल के बाद अधिकतर बच्चे माँ-बाप से अलग हो जाते हैं। इसे आधुनिकता कहते हैं। कभी- कभी तो ये आलम है कि —

हुए इस क़दर मुहज़्ज़ब कभी घर का मुँह ना देखा
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर

एक विचित्रता और। वहाँ पूरा बाज़ार शाम के पाँच बजे बंद हो जाता है, क्योंकि अब समय शुरू होता है परिवार के लिए। अच्छी ज़बरदस्ती है। चार बजे स्कूल बंद होते हैं, पाँच बजे ऑफिस। जब तक आप घर पहुँचे, सब कुछ बंद! कोई पूछे

लेखिका अपने परिवार के साथ

कि भय्ये family-time तो घर से बाहर जाकर शॉपिंग करके भी हो सकता है– Those who shop together stay together– घर बैठ कर एक-दूसरे का थोबड़ा देख-देख कर बोर नही हो जाएँगे परिवार वाले? पर हमें क्या? बस इतनी शिक़ायत रही कि हम जैसे परदेसी टूरिस्टों का तो कुछ ख़याल करते। कोई बात नहीं, शॉपिंग ना सही विदेश-दर्शन ही सही। ख़याल बुरा नही था, अनुभव भी बढ़िया रहा। पर्थ से चालीस किलोमीटर दक्षिण में रौकिंघम देखने लायक स्थान है। यहाँ का बीच (beach) केवल जल-क्रीड़ा (surfing, diving, snorkling, swimming and golf-playing) के लिए ही मशहूर नही है, यहाँ आप डॉल्फ़िन और पेंग्विन भी देख सकते हैं। पर्थ से लगभग ढाई सौ किलोमीटर दूर माग्रेट रिवर (Margaret River) का इलाका है। यहाँ सौ के करीब गुफ़ाएँ हैं। पर्यटकों को केवल तीन caves ही दिखाई जाती हैं। इनकी खूबसूरती का अंदाज़ा इन्हें देख कर ही लगाया जा सकता है। Capr Leeuwin में Australia ka tallest light house Busselton town में jetty train समुद्र के अंदर दो कि.मी. तक जाती है। इस टॉय ट्रेन का अपना ही आनंद है।

हम पश्चिमी सभ्यता को लाख बुरा कहें, सच यही है- बुरा जो देखन मैं गया, बुरा ना मिलया कोय, जो दिल देखा आपनो मुझसे बुरा ना कोय। अपने महान भारत में जितना भ्रष्टाचार है उसका पसंग भी वहाँ नही है। लोग घर ही नहीं, घर के सामने सड़क तक सफाई रखते हैं, अपने घर का कचरा पड़ोसी के घर की तरफ नहीं फेंकते। घर का फालतू सामान, यहाँ तक कि घर में लगे फल एवं सब्ज़ियाँ भी सड़क के किनारे घर के सामने लौन में रख देते हैं– जिसे ज़रूरत हो, ले जाए। धोखा-धड़ी का कोई मामला हमने नहीं देखा। लोग पेट्रोल पंप पर खुद ही पेट्रोल भरते हैं और अंदर ऑफिस में जाकर दम चुका देते हैं (अपने भारत में तो टंकी फुल करके चलते बनेंगे और सोचेंगे हम कितने होशियार हैं)। सबसे बड़ी बात है औरतों की इज़्ज़त। हमारे सीता, सावित्री के देश में, 'यत्र नर्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता' कह कर शेखी बघारने वाले पुरुषों के हिन्दुस्तान में जितनी छेड़छाड़, बलात्कार और बहू-दहन की घटनाएँ होती हैं, वहाँ ढूँढने से भी नही मिलतीं। महान भारत के महान नेता हमेशा औरतों पर टिप्पणी करते हैं—ड्रेस-कोड की बातें करते हैं। कभी अपनी मानसिकता को नहीं देखते। वहाँ लड़कियाँ कम से कम कपड़ों में नज़र आती हैं और एक सीटी की आवाज़ भी नहीं सुनाई देती। समुद्र के किनारे औरतों का हुजूम बिकिनी में घूमता-फिरता है– शाम के वक़्त भी। अजनबी लोगों से भी वे मुस्कुरा कर हेलो कहकर निकल जाती हैं। यह बिल्कुल सामान्य व्यवहार है। अपने देश में तो 'कुड़ी पट गयी' समझकर बूढ़े जवान पीछे-पीछे चल पड़ेंगे। यही लोग दुहाई देते हैं सभ्यता की!

बहुत कुछ देखा, बहुत कुछ सुना। देखने सुनने के लिए अपने देश में कोई कमी नही है, लेकिन बाहर जाकर ही पता चलता है हम कितने पानी में हैं। वरना कूप-मंडूक भी खुद को अलिम-फ़ाज़िल समझते हैं। बहुत कुछ कहना था, मगर 'मुख बिन नयन, नयन बिन बानी' वाली हालत है। इतना ही कह सकते हैं–

मोहब्बत को समझना है तो, नासेह, खुद मोहब्बत कर
किनारे से कभी अंदाज़-ए-तूफ़ान नहीं होता

बस अब वक़्ते-रुखसती है। परदेस के दर-ओ-दीवार पर हसरत की नज़र, और देश की ओर वापसी का सफ़र करते हैं।■

गर्भनाल

एक क्लिक पर पूरे अंक एक साथ

www.garbhanal.com

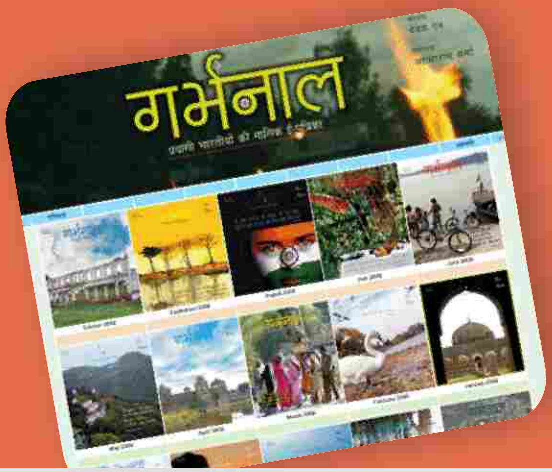

गर्भनाल के पुराने अंक पाएँ

एक साथ एक ही जगह

लॉगऑन करें

www.garbhanal.com

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

garbhanal@ymail.com

प्रोफेसर अम्लान दत्त
(१९२४-२०१०)
प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री, दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री होने के साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक विषयों पर अँग्रेजी एवं बांग्ला भाषाओं में लिखते रहे। उनके मत अक्सर तीव्र विवाद एवं बहस के विषय बने रहे। वे देश-विदेश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में उच्च पदों पर पदस्थापित रहे।

चेतना

बांग्ला से हिन्दी अनुवाद : गंगानन्द झा

आदमी के स्वभाव के दो छोर होते हैं – एक छोर पर आत्मरक्षा की प्रवणता होती है और दूसरे छोर पर औरों के साथ सम्पर्क तथा सम्प्रेषण स्थापित करने की गम्भीर आकांक्षा। इस दूसरे छोर पर चेतना का सम्प्रसारित रूप प्रगट होता है तथा पहले छोर पर अहम्-बोध की अभिव्यक्ति रहती है, जो चेतना का संकुचित रूप होता है। आत्मरक्षा और आत्मप्रसार – इन दो प्रवृत्तियों में विरोध तथा परिपूरकता का अवस्थान साथ-साथ रहा करता है। इनके द्वन्द्व और समन्वय के समीकरण के जरिए ही चेतना में गति आती है, व्यक्ति-चेतना और बृहत्तर समाज की अभिव्यक्ति होती है।

शैशवावस्था में हम प्रकृति के निकटतम सम्पर्क में होते हैं। इसलिए शिशु के आचरण से आदमी की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी हासिल की जा सकती है। अपनों का ध्यान अपने तक केन्द्रित और सीमित रखने का शिशु में प्रबल आग्रह रहा करता है। इसमें बाधा आने पर वह अपनी आपत्ति प्रबल रूप में व्यक्त करता है। यह अहं और अपने अस्तित्व की विशुद्ध स्वीकृति की आकांक्षा ही तो है। इसके साथ-साथ अपनी चेतना को प्रसारित करने की वासना भी रहा करती है, व्यक्ति के सीमाबद्ध अस्तित्व से परे जो कुछ है उससे सम्पर्क कायम करने की अदम्य इच्छा। इस इच्छा को अपने जीने के प्रयोजन की माँग की पूर्ति के प्रयास में आंशिक रूप में देखा जा सकता है; जैसे आत्मरक्षा के लिए संघबद्ध होने का प्रयोजन अथवा व्यावसायिक आवश्यकता, किन्तु इन सबके परे मनुष्य की चेतना में एक तृष्णा होती है– अपने साथ अपनों के, औरों के, एक मन के साथ दूसरे मन के सम्पर्क की तृष्णा प्रयोजन की मुँहताज नहीं भी हो सकती है। इसीलिए सामान्य सांसारिक बुद्धि इसको पूर्ण स्वीकृति देने में अक्षम होती है। पर सरसरी परीक्षण से ही जाना जा सकता है कि इस मामले में आदमी की व्यावहारिक बुद्धि स्वच्छ नहीं होती, सत्य-भ्रष्ट रहती है।

चेतना के अनेक रूप होते हैं, संकुचित तथा सम्प्रसारित। इनमें से किसी को भी मिथ्या कहकर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। चेतना गतिशील होती है, अहम् और विश्व - इन दो ध्रुवों के बीच इसका विचरण होता रहता है। संसार के छोटे से वृत्त की परिधि द्वारा घिरा हुआ है हमारा प्रतिदिन का क्रियाकलाप; जिसके बाहर मुक्ति का एक अलग संसार होता है। उस संसार की वाणी भी पँहुचती है हम लोगों के पास। व्यक्ति और विश्व के मिलन-विरह के सुर से हमारा श्रेष्ठ संगीत रचित होता है।

आवेग चेतना का एक महत्वपूर्ण उपादान होता है। कुछ आवेग आसक्ति-जात होते हैं, जैसे लोभ (जिसके साथ जुड़ी होती है आकांक्षा) अथवा भय (जिसके मूल में खोने की आशंका रहा करती है)। दूसरे प्रकार के आवेग नीति-बोध से सम्पृक्त होते हैं यानी अच्छा-बुरा, लाभ-हानि के बोध और विचार से रंगा हुआ। इसके बाहर है विस्मय-बोध, जो आदि-अभिज्ञता अथवा नूतन अनुभूतियों द्वारा आवेग का प्रधान उपादान बनता है।

इन सबों के मिश्रण से जीवन और जगत् को देखने का

> रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार मनुष्य को सुख मुक्ति नहीं दिलाता है, मुक्ति मिलती है आनन्द के पथ से। ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हम विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ ग्रहण करते हैं, ये सबके सब शरीर को आराम नहीं पहुँचाते।

दृष्टिकोण गठित होता है। विस्मय-बोध के साथ हम जो कुछ देखते हैं उसमें ही रहती है एक खास उज्ज्वलता; वैज्ञानिक के प्रथम आविष्कार की भाँति। इस उज्ज्वल अभिज्ञता को कलाकार शब्द, वाक्य, छन्द, रेखा और वर्णों में बांधकर रखना चाहता है। संसार में अति व्यवहार से ये धीरे-धीरे विवर्ण होने जाते हैं, निष्प्रभ। सांसारिक मनुष्य इसी विवर्ण विश्व को एकमात्र सत्य समझने के भ्रम में पड़ जाता है। कलाकार का अंगीकार होता है उस आग्रासी विवर्णता से शब्द और विश्व का उद्धार करना। नए तौर पर आत्मपरिचय का आविष्कार करना ही मुख्य बात होती है। विद्वेषमुक्त मन से जिस किसी भी काम में अपने को सम्पूर्णतः नियुक्त करने पर उस काम के ही माध्यम से मुक्तिलाभ की सम्भावना रहती है। जब तक मनुष्य अपना आत्मपरिचय अति-अभ्यस्त सांसारिकता के बीच सीमित रखता है– तब तक और चाहे जो कुछ भी हो जाए, मुक्ति नहीं मिल सकती। ग्रामीण-प्रकृति में कोई दोष नहीं होता, ग्राम्यता (गँवारुपन) में दोष है। विश्व-विमुखिता और अहम्-केन्द्रिक अति-इच्छा में दोष है?

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार मनुष्य को सुख मुक्ति नहीं दिलाता है, मुक्ति मिलती है आनन्द के पथ से। ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हम विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ ग्रहण करते हैं, ये सबके सब शरीर को आराम नहीं पहुँचाते। ऐसे एहसास जो आराम पहुँचाते हैं, सुख कहलाते हैं। जैसे सुस्वादु भोजन ग्रहण करने का अनुभव। तत्काल सुख देने वालों के अलावे ऐसी कुछ बातें होती हैं जिनसे भविष्य में सुख मिलने का आश्वासन मिलता है, जैसे अच्छी नौकरी मिलने का समाचार।

इन सबके परे एक अलग जाति की अनुभूति होती है– रोजाना जिन्दगी में इनका आना-जाना लगा रहा करता है, फिर भी इनकी भाषा अलग होती है। आँगन के बाग में कोई खिलता हुआ फूल। इस फूल की उन्मोचित होने को उद्यत पँखुड़ियों की ताजगी का आह्वान। अच्छा लगता है, देखते ही रह जाने का मन करता है। किसी सांसारिक प्रयोजन की पूर्ति का आश्वासन तो नहीं देता फिर भी। यह आनन्द है। यह अनुभूति आनन्द क्यों देती है? चेतना सीमा से परे जाने को उद्यत रहती है, विश्व को अपने अन्दर पाना चाहती है। इसी देने और पाने में ही उसका विशुद्ध आनन्द है। अहम्-बोध का अध्यात्म-बोध से अन्तर यहीं पर रहा करता है।

ज्ञानतृष्णा क्या होती है? हम अपनी जरूरत के कारण अनेक बातें जानना चाहा करते हैं, इनको जानने से हमें सहूलियत होती है रोजाना जिन्दगी में। किन्तु हम अनेक ऐसी बातें भी जानना चाहा करते हैं जिनके प्रत्यक्षतः उपयोगी होने की कोई सम्भावना नहीं होती, ऐसी जानकारी जिनकी कोई प्रयोजनीयता नहीं दिखती, फिर भी जिज्ञासा प्रबल हुआ करती है। अपनी पहचान के सम्बन्ध में जिज्ञासा होती है। मैं कौन हूँ, क्यों हूँ? मेरे होने का प्रयोजन क्या है? पारिवारिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से रहित व्यक्ति की पहचान कैसे की जाए? पहचान के इन प्रतीकों के बग़ैर रह पाना कठिन क्यों होता है?

व्यक्ति चेतना के केंद्र में होता है अहं-बोध। जिस शरीर विशेष पर आधारित रहते हुए चेतना विकसित होती है, उसकी रक्षा करने के प्रति व्यक्ति में स्वाभाविक रुझान होता है खुद और गैर के बीच फ़र्क़ कायम कर ग़ैरों से होने वाले हमलों से अपनी खुद की हिफ़ाजत करने की ओर चेतना खबरदार रहती है। लेकिन साथ ही साथ आत्मरक्षा के ही लिए जरूरत रहती है कि उन ग़ैरों के साथ विभिन्न किस्म के सहकार में बँधे रहने की। अहम् आत्म-रक्षा और आत्मप्रसार के प्रति हमेशा आग्रही रहा करता है। एक आदिम द्विधाग्रस्तता मानव चेतना में शैशवावस्था से ही सन्निहित रहा करती है।

कुछ आवेग, जो आत्मरक्षा में सहायक रहा करते हैं, मनुष्य ने प्रकृति से पाए हैं। भय तथा विपत्ति से दूर रहने की प्रवृत्ति, हिंसा तथा क्रोध, विपत्ति के हेतु (कारण) अर्थात् शत्रु का ध्वंस करने की स्पृहा इनके अलावे लोभ, बाहर की चीजों पर कब्जा करने की असंयत आकांक्षा। धन, यश, क्षमता ये सब लोभ की चीजें हो सकती हैं। व्यक्ति और समाज के क्रम-विकास के साथ इन मौलिक आवेगों के रूप में, बाह्य प्रकाश में परिवर्तन आया है। चेतना के आदिम स्तर पर ये अंधशक्ति में, बुद्धि के स्पर्श से करीब करीब वञ्चित रहा करते हैं। क्रम से इन अंध शक्ति के साथ संयोग हुआ बुद्धि विवेचना का और व्यावहारिक कौशल का। इस प्रकार चेतना का मध्य स्तर उभड़ा; अंधत्व से व्यावहारिक कौशल का उन्नयन हुआ।

मानव इतिहास के एक बड़े काल खण्ड में आदिम अंध प्रवृत्ति का साम्राज्य रहा है। वह ऐसा समय था जब इस अंध शक्ति के बग़ैर मनुष्य के लिए टिक पाना संभव नहीं था। आज आदमी के कब्जे में घातक अस्त्र का भण्डार जिस अनुपात में बढ़ता जा रहा है, उसी अनुपात में उसे अपनी हिंस्र प्रवृत्ति पर काबू रखना अनिवार्य होता जा रहा है।

चेतना के आदिम स्तर से मध्य स्तर तक की गति का कारण समझना बहुत कठिन नहीं है, आदिम स्तर पर अंध आवेग की प्रधानता होती है। इस का एक बड़ा खतरा होता है। इसे मात्रा ज्ञान नहीं रहता, नतीजतन अभीष्ट की उपलब्धि नहीं हो पाती।■

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत। विश्वविद्यालय में अतिथि अध्यापन का सुदीर्घ अनुभव। आजीवन सदस्य : ग्वालियर एकेडेमी ऑफ मैथमेटिकल साइंसेज, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली।

सम्पर्क : २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल : shrivastava.brijendra@gmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

कर्म सिद्धान्त-१

व्यक्तित्व विकास और कर्म के तीन रूप

जीवन एक सतत प्रतिस्पर्धा है जिसमें कुशलता दिखाकर ही व्यक्ति डटा रह सकता है। डार्विन ने इस संघर्ष को समूचे प्राणीजगत पर लागू करते हुए इसी बात को एक सिद्धान्त का रूप दे दिया- 'सर्वाइवल आफ फिटेस्ट'। डार्विन की इस बात को काव्यात्मक ढंग से रखते हुए कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है : योग्यजन ही जीता है - पश्चिम की उक्ति नहीं (यह) गीता है गीता है। दूसरी तरफ वे लोग हैं जो रोज-रोज के संघर्ष से बचे हुए सुखमय जीवन जीते हैं; उनकी नजर में जीवन एक संगीत है जो मनुष्य के अपने श्वास-प्रश्वास में; मिलन-वियोग में; सितारों की झिलमिलाती रातों में और धूप से चटखते दिनों के बीच गूँज सा रहा है।

नियमबद्धता : जीवन चाहे संगीत हो, प्रतिस्पर्धा हो या खेल सभी में कुछ न कुछ नियम देखे जाते हैं। संगीत में स्वर की परस्पर दूरी के अनुपात के नियम हैं जिनसे संगीत के चल-अचल सप्तक बनते हैं फिर चाहे वह संगीत भारतीय हो या पश्चिमी; लोक संगीत हो या लहरों का संगीत ही क्यों न हो। इनसे हट कर गाने बजाने पर संगीत बेसुरा हो जाता है; नए प्रयोग इन्हीं से होते हैं। इसी प्रकार प्रतिस्पर्धा में भी नियम होते हैं जिनका पालन नहीं करने पर हार-जीत पर असर पड़ता है।

नियमबद्धता केवल जीव जगत के अस्तित्व से ही नहीं जुड़ी है; कभी सौम्य और कभी रौद्र दिखती प्रकृति में भी एक अद्‌भुत नियमबद्धता एक अनोखी लयात्मकता है जिसका आरंभिक रूप हमें इसके दैनिक मासिक वार्षिक चक्र में दिखता है। सूर्योदय की ऊष्मा दोपहर का आतप बन जाती है और यही संध्या की मृदुलता। इनमें परिवर्तन ऋतु चक्र के नियम अनुसार ही होता है। ऋतु विपर्यय का अचानक मौसम बदलाव का भी नियम है जिसे हम जानने की चेष्टा करते रहते हैं। प्रकृति के और भी बड़े चक्र हैं। सभ्यताओं के उत्थान पतन का छब्बीस हजार वर्षीय चक्र, लाख वर्ष का हिमयुग चक्र और सृष्टि के आरम्भ और प्रलय का चक्र जो ब्रह्मा के एक दिन अर्थात कल्प के बराबर होता है।

यदि सभी तरफ नियम हैं तो इन नियमों का कोई नियंता भी है क्या? नियंत्रणकर्ता के होने न होने के सवाल पर धर्म दर्शन और विज्ञान बंटे हुए हैं, मतभेद हैं इनमें। धर्मविज्ञान के अनुसार सर्वशक्तिमान सत्ता ईश्वर ही जड़ चेतन

"वे लोग जो रोज-रोज के संघर्ष से बचे हुए सुखमय जीवन जीते हैं; उनकी नजर में जीवन एक संगीत है जो मनुष्य के अपने श्वास-प्रश्वास में; मिलन-वियोग में; सितारों की झिलमिलाती रातों में और धूप से चटखते दिनों के बीच गूँज सा रहा है।"

> मनुष्य को अपने किए सभी अच्छे और बुरे कर्म का फल आवश्यक रूप से भोगना पड़ता है। मनुष्य अपने कर्म के फल से बच नहीं सकता और जिन कर्मों के फल वह इस जीवन में नहीं भोग पाता उन्हें भोगने के लिए उसे बार-बार जन्म-मृत्यु चक्र में पड़ना पड़ता है।

जगत का सृष्टा पालनकर्ता और संहारकर्ता है; धर्म का दावा है कि उसने जो नियम मनुष्य के सामाजिक आचार-व्यवहार के लिए बनाए हैं वे सब उसी सर्वनियन्ता की अभिव्यक्ति मात्र हैं। इमेन्युअल कान्ट ने तो इस ईश्वरीय सत्ता को विधि (क़ानून) के क्षेत्र में भी मान्यता देते हुए इस डिवाइन ला को मनुष्य कृत विधि (क़ानून) तक जोड़ दिया है।

दर्शन में इस सत्ता के सम्बन्ध में अस्ति-नास्ति अर्थात है या नहीं है अथवा है भी और नहीं भी है जैसी बातें दुनिया के सभी दर्शन चिन्तन में पाई जाती हैं। रही बात विज्ञान की तो विज्ञान की राय में प्रकृति के अपने स्वयं के नियम हैं उसी के अनुसार सब काम हो रहे हैं जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम हैं कि वस्तु ऊपर से फेंकने पर नीच ही गिरेगी। आग में ताप है वह शीतल नहीं हो सकती, जल में शीतलता है। ये सब प्राकृतिक नियम हैं। इसमें सातवें आसमान पर बैठे किसी शक्तिमान की या इसकी कल्पना मात्र की आवश्यकता विज्ञान को नहीं लगती। विज्ञान प्रकृति के इन नियमों को जान कर निरंतर शक्तिशाली होता जा रहा है।

धर्म, विश्वास और श्रद्धा पर आधारित है जबकि विज्ञान संदेह और प्रत्यक्ष प्रयोग पर; विज्ञान की समस्या है कि यह प्रत्यक्षवादी है जबकि संसार को चलाने वाली सत्ता अप्रत्यक्ष है निराकार है। यदि हम आज के युग के सबसे बड़े वैज्ञानिक आइंस्टीन के ईश्वर पर विश्वास की बात करें तो आइंस्टीन भले ही व्यक्तिगत ईश्वर को साफतौर पर नहीं मानते थे परन्तु प्रकृति की रमणीयता में होने वाली रहस्यात्मक अनुभूति को 'सैन्स आफ मिस्ट्री' को वह सर्वाधिक आनंदमय मानते थे। भौतिकी के प्राध्यापक एन्डरेव व्हिटाकर (Andrew Whitakar) के अनुसार आइंस्टीन का मत था- 'ईश्वर को प्रकृति में नहीं बल्कि विश्व ब्रह्माण्ड के नियमों के देखा जा सकता है। ब्रह्माण्ड का अध्ययन ही ईश्वर की खोज है। (टाइम्स आफ इंडिया ५ अप्रैल २००८ का पृष्ठ १४)

वस्तुतः जीव जगत के सूक्ष्म स्तर डीएनएन के स्ट्रैंड से लेकर अनन्त आकाश गंगाओं के सृजन तक में अनोखी नियम बद्धता है, लयात्मकता है; विज्ञान इसे निराकार सिद्धान्त में व्यक्त करता है जबकि भक्त इसमें ही ईश्वर का साकार रूप देखता है और ज्ञानी निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति करता है।

इसी प्रकार व्यक्ति के भौतिक व्यवहार में धर्म के आचार व्यवहार परक नियम हैं। व्यक्ति के मानसिक जगत में सामाजिक-दार्शनिक चिंतनपरक नियम सिद्धान्त हैं और समूची सृष्टि के व्यवहार में विज्ञान के अनुसन्धान परक नियम हैं।

मनुष्य के विकास के क्या नियम हैं? मनुष्य ने अपने विकास के नियम स्वयं बनाए हैं या वे भी पहले से ही बने हुए हैं? वैसे धर्म दर्शन और सृष्टि सभी नियम मनुष्य की ही खोज हैं। प्रकृति पर मनुष्य अपनी समझ से नियम आरोपित करता है इसका प्रमाण यह है कि समय बदलने के साथ वह इनमें नए बदलाव लाता है अथवा नयी व्याख्या करता है। ऐसा वह धर्म दर्शन समाज व्यवहार और विज्ञान सभी क्षेत्रों में करता आ रहा है। स्व-विकास का नियमन कार्य मनुष्य के व्यक्तित्व का हिस्सा है जिसे पुरुषार्थ कहा जाता है। आज के बिजनेस मैनेजमेंट के अस्थिर मानदण्डों के विपरीत भारतीय जीवन प्रणाली का प्रबंधन लाइफ मैनेजमेंट बहुत परीक्षण के पश्चात चार स्थिर सेक्टरों में बाँटा गया गया है जिन्हें 'पुरुषार्थ चतुष्टय' कहा गया है; इन्हें आयु के चार वर्गों से जोड़ते हुए इन चारों को दक्षतापूर्वक सम्पन्न करने की अपेक्षा की गयी है। ये चार पुरुषार्थ हैं : धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ, काम पुरुषार्थ और मोक्ष पुरुषार्थ। इनको साधने से ही मनुष्य के व्यक्तित्व विकास के साथ समाज का भी विकास हो सकता है। यह मनुष्य के विकास का नियम है जिसमें मनुष्य व समाज के बीच द्वंद्वात्मकता को संतुलित रूप दिया गया है जिसके कई पहलू हैं।

सभी पुरुषार्थ कर्म पर आधारित हैं। कर्म करने से ही पुरुषार्थ सम्पन्न होता है। राजा भृतहरि कहते हैं कि उस कर्म को प्रणाम है जिससे ब्रह्मा भी प्रभावित होता है 'नमः तत्कर्मे विधिः अपि येभ्यः प्रभवति' (नीति शतक ९१)। अतएव कर्म क्या है और कर्म का बहुचर्चित विशेष सिद्धान्त क्या है इसे समझ लेने पर पुरुषार्थ कर्मों को हम और भी बेहतर ढंग से सम्पन्न कर सकते हैं।

कर्म सिद्धान्त : मनुष्य को अपने किए सभी अच्छे और बुरे कर्म का फल आवश्यक रूप से भोगना पड़ता है। मनुष्य अपने कर्म के फल से बच नहीं सकता और जिन कर्मों के फल वह इस जीवन में नहीं भोग पाता उन्हें भोगने के लिए उसे बार-बार जन्म-मृत्यु चक्र में पड़ना पड़ता है। प्रत्येक जन्म में और नए कर्म जुड़ते जाते हैं और पुराने कर्म घटते, कटते जाते हैं। यही कर्म सिद्धान्त है। इसमें कर्मफल भोग के लिए पुनर्जन्म सिद्धान्त को मान्यता स्वतः ही एक अनिवार्यता है। कर्म सिद्धान्त को

आजकल न्यूटन के मेकेनिक्स से जोड़कर भी पश्चिमी देशों में देखा जाता है। क्योंकि 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्म फल शुभाशुभं' कर्मफल शुभ हों या अशुभ अवश्य ही भोगना पड़ते हैं - को देखते हुए - गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है कि - कर्म सिद्धान्त में निश्चयात्मकता है। कहा गया कि जैसे बहुत सी गायों में बछड़ा अपनी माँ को खोज लेता है वैसे ही कर्मफल अपने कर्ता को खोज लेते हैं। पर बात इतनी आसान नहीं दिखती इसीलिए कृष्ण ने कहा है 'गहना कर्मणा गतिः' कर्म की गति गहरी है।

कर्मों के इस सिलसिले या क्रम को तीन भागों में बाँटा गया है : क्रियमाण कर्म, संचित कर्म और प्रारब्ध कर्म।

क्रियमाण कर्म : यदि एक दिन का ही गणित किया जाए तो मन में जो प्रतिक्षण, प्रति मिनिट से लेकर दिन के सम्पूर्ण चौबीसों घंटों में कितनी इच्छाएं मन में तरंग की तरह उठती हैं? इन इच्छाओं को पूरा करने के लिए मनुष्य प्रतिक्षण कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। इन कर्मों में से बहुतों का फल तत्काल या विलम्ब से मिल भी जाता है और प्रत्यक्ष दिखता भी है जैसे भूख प्यास नींद आदि शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किये जाने वाले कर्म। इनका फल भी शीघ्र मिल जाता है। कुछ कर्म ऐसे हो सकते हैं जिनका फल कुछ देर बाद मिलता। कुछ का फल जन्म जन्मांतर पश्चात मिलता है।

कर्म की प्रकृति के अनुसार कर्मफल पकने में समय लगता है। प्रत्येक कर्म को अपनी प्रकृति के अनुसार फल देने में समय लगता है। उदाहरण के लिए दालों को अंकुरित करने में हमें दो दिन लगते हैं पर इसी दाल की फसल लेने में कुछ माह लगते हैं, कुछ वृक्षों में फल वर्षों बाद तक लगते हैं। स्पष्ट है कि बहुत से क्रियमाण कर्म के फल मिलने में वैसी परिस्थिति पैदा होने समय लगता है इसलिए जो क्रियमाण फल अपनी प्रकृति के अनुसार परिस्थिति मिलने तक फल नहीं दे पाते वे संचित कर्म के खाते में जमा हो जाते हैं और इसी जन्म में या अगले किसी जन्म में उनके अनुरूप परिस्थित बन जाने पर फल देकर शांत हो जाते हैं।

> "कर्म की प्रकृति के अनुसार कर्मफल पकने में समय लगता है। प्रत्येक कर्म को अपनी प्रकृति के अनुसार फल देने में समय लगता है। उदाहरण के लिए दालों को अंकुरित करने में हमें दो दिन लगते हैं पर इसी दाल की फसल लेने में कुछ माह लगते हैं, कुछ वृक्षों में फल वर्षों बाद तक लगते हैं।"

पर इतना तो स्पष्ट हो गया कि क्रियमाण कर्म का बहुत बड़ा भाग नित्य प्रति संचित कर्म के खाते में जमा होता रहता है। ज़रा विचार करिये कि हमारे अब तक के जीवन में कितने क्रियमाण कर्म हमारे संचित कर्म के रूप में जमा हो गए होंगे इसका अनुमान लगा पाना क्या संभव है? फिर पिछले अनन्त जन्मों से जमा हो रहे संचित कर्मों का हिसाब तो हो ही नहीं सकता।

क्रियमाण कर्म के इसी जन्म में फल का एक उदाहरण- इसे हम एक सत्य घटना के आधार समझने का प्रयास करेंगे। कुछ लोगों ने उत्तर प्रदेश के झांसी नगर में सत्तर के दशक में एक वकील को षड्यंत्रपूर्वक जीप के नीचे गिराकर ऊपर से जीप चढ़ा कर मार दिया। वर्षों बाद षड्यंत्रकारियों में से एक का पुत्र उसी नगर में बीच बाजार में अपनी ही जीप से गिर पड़ा और उसकी ही जीप ठीक उसी प्रकार से उसके ऊपर से निकल गयी जैसे वर्षों पूर्व वकील के ऊपर से निकाली गयी थी। इस प्रकार उसका ठीक वैसी ही परिस्थिति में अन्त हो गया। कहा जा सकता है कि षड़यंत्रकारी को कर्म का फल इसी जन्म में मिल गया। अब यह अलग विवेचन का विषय है कि पिता के कर्म का फल पुत्र को क्यों मिला? इस प्रश्न का समाधान महाभारत के एक प्रसंग में, भीष्म पितामह ने किया है।

संचित कर्म : जो क्रियमाण कर्म बैर या प्रीति के भाव के कारण चित्त पर संस्कार बना लेते हैं उनमें से जो फल देने के लिए उपयुक्त परिस्थिति के अभाव में इस जीवन में फल नहीं दे पाते वे संचित कर्म कहे जाते हैं जो फल देने तक जन्म जन्मांतर तक निरंतर संचित होते रहते हैं इन्ही संचित कर्मों में से जो कर्म अगले जन्म का हेतु या कारण बनना निश्चित हो जाता है उन्हें नियत विपाकसंचित कर्म अथवा प्रारब्ध कहा जाता है। जिन शेष संचित कर्मों का फल परिपाक अर्थात फल देना तय नहीं होता वे अ-नियत विपाक संचित कर्म कहे जाते हैं। अनियत का अर्थ ही है कि उनके परिपाक होने का, मैच्योर होने का समय तय नहीं।

संचित कर्म, इस प्रकार एक तरह से जीवात्मा का बैंक या पोस्ट आफिस के बचत खाते में जमा धन की तरह होता है जिसमें जमा होने योग्य क्रियमाण कर्म जमा होते रहते हैं। इनमें से जो कर्म फल देने लायक हो जाता है अर्थात नियत विपाक हो जाता है उसे समय आ जाने के कारण प्रारब्ध के नाम से वैसे ही निकाल लिया जाता है जैसे कि फिक्स्ड जमा धन, समय सीमा पूरी होने पर आहरित कर लिया जाता है अर्थात निकाल लिया जाता है।

जीवात्मा के नाम पर चल रहा कर्म के जमा और खर्च का यह क्रम जन्म जन्मान्तर तक अनन्त काल से चलता आ रहा है

और चलता रहेगा जब तक कि संचित कर्मफल का यह खाता शून्य नहीं हो जाता। कर्म सिद्धान्त का यह दूसरा पहलू है जिसके अनुसार कर्मफल भोग के लिए पुनर्जन्म का सिद्धान्त अनिवार्य आवश्यकता है।

मनुष्य कितने जन्मों से कितने कर्म संचित कर रहा है इसकी कोई गिनती नहीं हो सकती पर वह अपने इस खाते को देख नहीं सकता। केवल योगी और सिद्ध साधक और संत ही अपने पूर्व जन्मों के संचित कर्मों को देख सकते हैं और ऐसे बीज रूप में पड़े संचित कर्मों के बीज को जिन्होंने प्रारब्ध के रूप में फल देना आरम्भ नहीं किया है, भक्ति की धारा में विसर्जित कर सकते हैं। अथवा योगाग्नि से भस्म कर सकते हैं। प्रश्न हो सकता है कि आधुनिक विज्ञान के अनुसार समस्त स्मृति का केंद्र तो मन-मस्तिस्क है जो प्राणी के शरीरान्त के साथ नष्ट हो जाता है फिर यह जन्म जन्मांतर की स्मृति कैसे और कहाँ संचित होती रहती है? यह कर्म स्मृति सूक्ष्म शरीर में सुरक्षित रहती है और सूक्ष्म शरीर के साथ अगले जन्म के शरीर में अंतरित हो जाती है

प्रारब्ध कर्म : असंख्य जन्मों की वासनाओं के कारण जो कर्म संचित हो गए हैं उनमें से जिन संचित कर्मों के कारण अगला जन्म मिलता है उन कर्मों का नाम प्रारब्ध कर्म हो जाता है। प्रारब्ध नाम से चिह्नित किये गए ऐसे कर्म, संचित कर्म में से घट जाते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि जिन कर्मों के कारण वर्तमान देह अर्थात शरीर मिला है वे प्रारब्ध कर्म कहे जाते हैं। प्रारब्ध कर्म से केवल वर्तमान देह ही नहीं मिलता इस देह के साथ-साथ आयु और भोग ये दो फल और मिलते हैं क्योंकि इन दो के बिना केवल शरीर से प्रारब्ध कर्म का भोग नहीं हो सकता। संसार में मनुष्य से लेकर पशु, पक्षी कीट पतंग जीवाणु इत्यादि अनन्त प्रकार के प्राणी होते हैं और प्रत्येक प्राणी का अलग-अलग प्रकार का शरीर होता है। इसे योनि भी कह सकते हैं।

इस प्रकार प्रारब्ध के रूप में तीन चीजें जीवात्मा को इस जन्म में प्राप्त होती हैं : जाति या योनि या शरीर, आयु और भोग (तद् विपाकः जाति आयुः भोगः, पातंजल योग दर्शन साधना पाद सूत्र १३)। भोग के अंतर्गत व्यक्ति को वर्तमान जन्म में प्राप्तव्य समस्त सांसारिक सुख शामिल किए जा सकते हैं जैसे स्वास्थ्य बुद्धि विवेक, सन्तान कलत्र सहित परिवारसुख, सामजिक प्रतिष्ठा इत्यादि सभी कुछ।

अन्तमति सो गति का अर्थ : प्रश्न हो सकता है कि संचित कर्मों के अनन्त भण्डार में से कौन से कर्म कब और क्यों कैसे इस वर्तमान जन्म का या कहें कि प्रारब्ध का कारण बनते हैं। इस पर विभिन्न दर्शनों में कुछ अन्तर से लगभग एक सी ही बात कही गयी है कि जिन कर्मों की वासना चित्त में मृत्यु के समय प्रबल रूप से सक्रिय हो उठती है ऐसे कर्म ही वर्तमान जन्म का कारण बनते हैं। गीता में स्पष्ट किया गया है कि व्यक्ति अन्तकाल में जिस भाव का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है उसी भाव को वह प्राप्त होता है (गीता अध्याय ८ श्लोक ६)। इस 'अन्त मति सो गति' नियम का उदाहरण हैं चक्रवर्ती राजा भरत जो राजपाट छोड़ कर तप करने गए और चित्त शुद्ध कर लिया। पर एक मृग शावक को बचाने के बाद उनका मन उस मृग शावक में इतना आसक्त हो गया कि उनके चित्त पर मृग के प्रति मोह का संस्कार पड़ गया और मृत्यु के समय मृग मोह का संस्कार प्रबल बने रहने से उन्हें अगले जन्म में मृग की योनि या शरीर प्राप्त हुआ।

कर्म इस प्रकार एक सतत प्रक्रिया है, बहती हुई नदी है जिसमें क्रियमाण संचित और प्रारब्ध के तीन अलग पर मिले जुले घाट बने होने से कर्म का प्रवाह अलग-सा दिखता है।

कौन सा भाव अंतकाल के समय मन में उदित होगा इसकी व्याख्या योग दर्शन में करते हुए कहा गया है कि जिन कर्मों के संस्कार चित्त में प्रबल रूप से स्थापित हो गये हैं ऐसे कर्माशय (कर्म की वासना) के संस्कार प्रधान कर्माशय कहे जाते हैं। ये प्रधान कर्म संस्कार ही अंतकाल में मन छा जाते हैं और प्रारब्ध बन कर अगले जन्म का कारण बनते हैं।

मन पर संस्कार का महत्व इसीलिए माना गया है संगति सत्संग सत्साहित्य से मन पर विशेष संस्कार बनते हैं। यह बात अब दकियानूसी नहीं कही जा सकती क्योंकि हम देख रहे हैं कि मार्केटिंग एड-गुरु विज्ञापनों की बौछार से बच्चों और किशोर वय के मन पर वस्तुओं के ब्रांड नामों के संस्कार बनाने में कितने सफल हो रहे हैं; दुकान पर जाते ही बच्चा एड-गुरु की बताई चीज के लिए मचल जाता है।

कर्म इस प्रकार एक सतत प्रक्रिया है, बहती हुई नदी है जिसमें क्रियमाण संचित और प्रारब्ध के तीन अलग पर मिले जुले घाट बने होने से कर्म का प्रवाह अलग-सा दिखता है।

व्यक्तित्व के विकास में इस प्रकार कर्म कौशल के साथ-साथ उसके पूर्वजन्म कृत कर्म भी पैदाइशी संस्कार बनकर प्रभावित करते चलते हैं, कर्म सिद्धान्त का यह एक मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक पहलू भी है।■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

अतुलितबलधामं

जिस तरह से सुंदरकांड का प्रथम संस्कृत छन्द राम के बारे में है, यह तीसरा और अंतिम संस्कृत छंद उनके अनन्य सेवक हनुमान के बारे में है। सेव्य और सेवक के बीच, भगवान और भक्त के बीच दूसरा संस्कृत छंद है- निर्भरां भक्ति का छन्द। इन दोनों के बीच किसी तीसरे छंद की- किसी और चीज की- जैसे जरूरत ही नहीं है। इसलिये आरंभिकी में तीन ही छन्द हैं। भगवान, भक्ति और भक्त की त्रयी बनाते। यदि न्यूटन की गति के तीन नियम हैं तो यहां रघुपति के अमोघ बाणों की तरह चलने वाले हनुमान की गति से पूर्व भी तीन नियम स्थापित होते हैं। आराध्य कैसा हो, आराधना कैसी हो, आराधक कैसा हो- ये तीन छंद इन सवालों का जवाब हैं।

हनुमान को सबसे पहले 'बल' के गुण के साथ याद किया गया जबकि राम को शांति के गुण के साथ याद किया गया। यह किसी किस्म का कंट्रास्ट नहीं है, यह हम 'शान्त' अध्याय में भी देख चुके हैं। सेवक का 'बल' सेव्य की शांति का कारण है। बल एक ऐसा वर्चु नहीं है जिसकी उपेक्षा की जाए। भले ही वह निराभौतिक भी क्यों न हो। वह अपने किस्म का यथार्थवाद है। विवेकानन्द कहते थे : '**केवल एक पाप है। वह है दुर्बलता।**' राम के साथ बल की बात करना, ईश्वर के साथ 'बल' की बात करना उसे कुछ ज्यादा ही पार्थिव बनाना है। वह तुलसी को नहीं रुचता। लेकिन तुलसी अव्यावहारिक नहीं हैं। इसलिए राम के संबंध में जिस गुण को वह उल्लिखित नहीं करते, हनुमान के संबंध में उसका प्रथमोल्लेख करते हैं। राम के संबंध में जिस 'बल' का बहिरंगीकरण (exteriorization) हनुमान के रूप में दिखाया है, ईश्वर के साथ उसी बल का बहिरंगीकरण, भारतीय परंपरा में, शक्ति के रूप में हुआ, इसलिए तुलसी परंपरा से कोई बहुत फर्क नहीं कर रहे। राम को महाबली कहना कैसा लगेगा? ईश्वर को महाबली कहना कैसा लगेगा? हमारी परंपरा उसे 'आलमाइटी' भी नहीं कहती। लेकिन हनुमान को महाबली कहा गया। जोसेफ आल्टर का उत्तरभारत की पहलवानी पर एक एदनोग्राफिक अध्ययन - द रेसलर्स बॉडी के नाम से है। उसमें एक अध्याय पहलवानी के संरक्षक देवता - हनुमान पर है। यह हनुमान की शुद्ध दैहिक प्रेरणा का निरूपण है। अगस्त्य मुनि से श्रीराम ने विनयपूर्वक कहा था '**अतुल बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च/न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम**' कि महर्षि निःसंदेह बाली और रावण के बल की कहीं तुलना नहीं थी,

> *राम को महाबली कहना कैसा लगेगा? ईश्वर को महाबली कहना कैसा लगेगा? हमारी परंपरा उसे 'आलमाइटी' भी नहीं कहती। लेकिन हनुमान को महाबली कहा गया।*

> भीम में हजार हाथियों का बल होगा, हनुमान हमें वह सांख्यिकीय संतोष भी नहीं देंगे। राम की तरह शिव को भज लो, शिव की तरह राम को, कृष्ण की तरह करीम को भज लो- एक ही बात है। पर हनुमान की तरह तो सिर्फ हनुमान को ही भजा जा सकता है।

परन्तु मैं समझता हूँ कि इन दोनों का बल भी हनुमान की बराबरी नहीं कर सकता था।

उससे कहीं आगे चलकर हनुमान अपने आराध्य की 'वाइटल इनर्जी' हैं। वे भक्ति और शक्ति के बीच के सेतु हैं। भक्त भगवान की ऊर्जा है। वे जिस 'बल' को रूपायित करते हैं, वह बल सिर्फ पोटेंसी नहीं है, वह एक ड्राइव भी है। उनका बल इस बात में नहीं है कि वे उसके धारक हैं, इस बात में है कि वे उसके प्रयोक्ता हैं। उनकी विशेषता बली होने में नहीं है, बल के सही उपयोग में है। बली होना 'बुली' होना- दादा होना नहीं है। आपके बल की परीक्षा आपकी बैकबोन से होती है- मेरुदंड से, आपकी दादागिरी से नहीं होती। हनुमान के साथ जितनी उनकी शक्ति याद आती है, उतनी उनकी विनम्रता भी।

हनुमान का बल अतुलित है। यानी न तो वो गोलिअथ जैसा है, न सैम्सन जैसा। न नृतत्वशास्त्रियों द्वारा वर्णित मैगनथ्रोपस या जावा मैन जैसा है। न यति जैसा। न वो स्मिथसोनियन जाइंट जैसा है, न वह १९३६ में चाड में फ्रेंच पुरातत्वविदों द्वारा ढूंढ़े गये महाकार 'साओस' जाति के लोगों जैसा। न वह १९३० में बाथहर्स्ट में मिले उस जीवाश्म आदमी जैसा है जो २५ फीट लंबा और विशालकाय मनुष्य था, न वह न्यूसाउथवेल्स के ब्लू माउंटेन में मिले पद चिन्हों से प्रमाणित २० फीट लंबे आदमी जैसा। न वह भीम जैसा है कि जो अगले युग में हनुमान की पूंछ तक नहीं हटा सके। मार्को पोलो द्वारा जंजीबार में पाए गए महाकार लोगों की प्रजाति या कार्नवाल, जो 'लैंड ऑफ द जाइंट्स' कहलाता है, के लोगों की प्रजाति भी उससे तुलनीय नहीं। कोडेक्स वेटिकेनस ३७३८ में चार देवताओं के द्वारा बनाए महाकार मनुष्यों क्विनामेट्जिन हुएट्लैकेम से भी उनकी तुलना नहीं, न संत क्रिस्टोफर से जिन्हें १२ से १८ फीट लंबा और लगभग आतंकित कर देने वाले देहाकार के साथ अत्यन्त दयालु और संवेदनशील स्वभाव का बताया जाता है। इतिहास में भी ऐसे कई उदाहरण हैं- हालांकि हनुमान उनमें से किसी से भी तुलनीय नहीं। मसलन, टर्की में १९५० में फरात नदी घाटी में कई ऐसी कब्रों का पता चला था जो १४-१६ फीट लंबे आदमियों की थीं। फ्लिंटशायर में १८३३ में सड़क बनाते समय 'जाइंट ऑफ द गोल्डन वेस्ट' कहलाने वाले वेल्श योद्धा बेनली की खोपड़ी मिली थी, हालांकि अभी यह पूर्णतः स्थापित नहीं है कि यह विशाल खोपड़ी बेनिली की है। स्पेन में वेलेंशिया में रॉय नोर्विल ने एक २२ फुट लंबे आदमी की कब्र ढूंढ़ निकाली। कांगो के पूर्व रुआंडा-उरुंडी में बातुसी जनजाति तो दुनिया के सबसे लंबे लोगों की प्रजाति कही जाती है। फिलीपींस में गर्गायन नामक जगह पर १७ फीट लंबा अस्थि जाल मिला। सर फ्रांसिस ड्रेक हों या मैगेलन या सर थॉमस कैवेन्डिश-सभी के यात्रा वृत्तांतों में महाबली, अतिशयाकार लोगों की जातियों के उल्लेख आए हैं। लाओस के पुराणों में 'यक्ष' नामधारी महाकारों के उल्लेख हैं। नोर्स पौराणिकी में ह्वौटुंग, ह्वीडमार, ह्विमथर्स, हौड, ह्यूम, ह्मिमर, हरुग्निर, हायरोकिन जैसे महाकारों के नामों की ध्वनि भी हनुमान का नाम स्मरण कराती है। इतिहास, पुराण और साहित्य (याद करें बिगब्राडनैक की दुनिया) ऐसे महाशक्तिशाली लोगों का स्मरण कराते रहे हैं। हनुमान अतिशक्तिशाली हैं- **'सुनतहिं भयउ पर्बताकारा'** हनुमान सुंदरकांड से पहले ही हो गए थे और सीता के परम संदेह पर भी वे **'सुनि कपि कीन्ह प्रकट निज देहा'**- के साथ **'कनक भूधराकार सरीरा'** के रूप में सामने आते हैं। लेकिन हैं वे अतुलित। इसलिए आज के जितने भी महाकाय दीर्घकाय लोग हैं, उन्हें अधिक से अधिक भीमकाय या भीमाकार कहा जाता है। उन्हें हनुमानकाय या हनुमानाकार नहीं कहा जाता, उन्हें 'इनमें बेहतर', या 'ईक्वली गुड' या 'लगभग बराबर' जैसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। उनकी मर्त्य मनुष्यों से कोई तुलना करके तुलसी किसी तुलनावाद (कंपेरेटिविज़्म) को प्रोत्साहन नहीं देते। वे शुरू में ही **अतुलित** बोलकर उन मूढ़ स्टैण्डर्ड्स को खारिज कर देते हैं जिनके द्वारा आदमियों या संस्कृतियों के 'ईगो' से खेला जाता है। ऐसा कर वे हनुमान को क्षणभंगुरता (transitivity) से बाहर करते हैं। मर्त्य मनुष्यों की जगह उनके लिए तो अधिकतम यही कहा गया- **पवन तनय बल पवन समाना।** अतुलित कहना हनुमान को किसी तरह से अधिकतमीकरण (Maximization) से भी परे दिखाना है और किसी तरह के इष्टतमीकरण (आप्टिमाइजेशन) से भी। हनुमान के बल वर्णन को हम अपनी भाषा की दुनियावी फांसों में नहीं उलझा सकते। किसी तरह के कंपेरेटिव या सुपरलेटिव उनके प्रसंग में व्यर्थ हैं। हनुमान सात सनातनों में हैं जबकि दुनिया के जिन महाशक्तिशालियों का हमने उल्लेख किया, वे समय के किसी बिंदु पर कीलित हैं। इसलिए हनुमान को हम विकल्प की तरह नहीं भजते- किसी च्वाइस या आल्टरनेटिव की तरह नहीं। हम हनुमान को हनुमान की तरह भजते हैं। भीम में हजार हाथियों का बल होगा, हनुमान हमें वह सांख्यिकीय संतोष भी नहीं देंगे। राम की तरह शिव को भज लो, शिव की तरह राम को, कृष्ण की तरह करीम को भज लो- एक ही बात है। पर हनुमान की तरह तो सिर्फ हनुमान को ही भजा जा सकता है। उन्हें हम इसलिए नहीं भजते कि वे और विकल्पों से ज्यादा खराब नहीं हैं। उन्हें हम इसलिए भी नहीं

भजते कि वे और उपलब्ध बली विकल्पों से बेहतर हैं। हनुमान हमें यह बताते हैं कि हम सबके भीतर शक्ति का एक अपार अप्रयुक्त भंडार है और एक बार उसके प्रति जागृत हो जाने पर वही व्यक्ति जो बाली से सुग्रीव की रक्षा नहीं कर पा रहा था, स्वयं भगवान राम के लिए संकटमोचक सिद्ध हो जाता है।

हनुमान को मनचाहा रूप धरने की जो शक्ति प्राप्त हुई थी, जो उन्हें एक तरह की मार्फोलॉजिकल फ्रीडम (रूपधारण स्वातंत्र्य) मिली थी वह इन दिनों के कॉमिक सुपरहीरो की प्रेरणा का भी कारण बनी है। ऐसे कई शेपशिफ्टर सुपरहीरो हैं - जैसे मिस्टर फैंटास्टिक, प्लास्टिक मैन, इलांगेटेड मैन, बीस्ट ब्वाय, केविन सिडनी, मिस्टिक, एटम, कॉलोसल ब्वाय, जार्गांटा, हैंक पिम आदि। फैंटास्टिक फोर का नेता रिचर्ड्स अपने शरीर को किसी भी रूप में स्ट्रेच कर सकता है। जब रीड अपने साथियों के साथ चोरी से अंतरिक्ष जाने वाले एक यान में बिना कवच के प्रवेश कर जाता है और उनका यान वान एलन पट्टी से गुजरता है और वे जागतिक विकिरण का शिकार बन जाते हैं तो यान को वापस धरती पर लौटने पर विवश होना पड़ता है। रीड पाता है कि उसका पूरा शरीर लचीला हो गया है और अपनी इच्छा से वह अपने शरीर को किसी भी आकार-प्रकार का बना सकता है। प्लास्टिक मैन को एक मुनि (monk) के प्रभाव से किसी अपरिचित एसिड के शरीर में फैल जाने से शरीर को रबर की तरह खींचने, बाउंस करने और ढालने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। हनुमान की भी परिवर्त्य दैहिकी (malleable physiology) सुंदरकांड में अपने चरम पर है।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा, तासु दून कपि रूप देखावा।

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा, अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।

मसक समान रूप कपि धरी ....

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना, पैठा नगर सुमिरि भगवाना।

बिप्र रूप धरि वचन सुनाए, ...

करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवां ....

प्लास्टिक मैन अपने शरीर को पूर्णतः चपटा कर किसी बंद दरवाजे के भीतर घुस जाता है और अपनी उंगलियों को ताले की चाबी बनाकर उसे खोल भी सकता है। वह अपनी शरीर-संहति (body mass) और शरीर संरचना को इच्छानुसार बदल सकता है। प्लास्टिक मैन की संकल्पना हनुमान से कितनी प्रभावित है, यह उसकी प्लास्टिसिटी, अक्षत रहने की शक्ति (invulnerability), अमरता (प्लास्टिक मैन को ३००० साल से जिंदा बताया गया है), अल्ट्रासोनिक डिटेक्शन जैसी शक्तियों से पता लगता है। राल्फ डिफनी नामधारी 'ईलांगेटेड मैन' कॉमिक सुपरहीरो की शक्तियां जिंगोल्ड नामक सोडा की उसकी मेटाह्यूमन दैहिकी के गुप्त जीन से संक्रिया होने से जागृत हुई हैं। हालांकि प्लास्टिक मैन की तुलना में उसकी रूप और आकार बदलने की क्षमता सीमित है। हनुमान की तरह इलांगेटेड मैन जासूसी करने में भी अत्यन्त दक्ष है। बीस्ट ब्वाय की रूप बदलने की क्षमता इतनी है कि उसका एक उपनाम चेंजलिंग भी पड़ गया। हनुमान यदि **'मसकसमान रूप कपि धरी'** की स्थिति में आ जाते हैं तो बीस्ट ब्वाय भी संसार के किसी भी जंतु का रूप धारण कर सकता है। एक अन्य सुपरहीरोइन मिस्टीक भी रूपातिक्रांति की योग्यता से संपन्न है। वह १०० साल से ज्यादा समय से सक्रिय बताई जाती है और वह सुंदरकांड के हनुमान की तरह रात में विचरण करने वाले नाइटक्रॉलर नाम के एक अन्य सुपरहीरो की मां भी है। एटम नामक एक अन्य सुपरहीरो एक बायो-बेल्ट पहनकर रूप बदल लेता है। जिम एलन नामक एक दूसरे सुपरहीरो का म्यूटेशन एक रेडियोएक्टिव उल्का के प्रभाव से हो जाता है और उसमें अपना आकार बढ़ाने की शक्ति आ जाती है। वह 'कोलोसल ब्वाय' बन जाता है। गार्गान्टा नामक एक और सुपरहीरोइन में भी आकार बदलने की यह शक्ति है लेकिन कभी-कभार उसकी ग्रोथ उसके नियंत्रण से बाहर होकर तांडव मचा देती है। वह मूलतः एक बायोकेमिस्ट थी जिसने V-47 फार्मूला संयोगवश खुद पी लिया। डॉ. हेनरी हैंक पिम की विशेषता यह है कि वह एक छोटे से कीड़े के रूप में भी सिकुड़ सकता है, कभी जाइंट-मैन बन सकता है, कभी गोलिअथ और कभी यलोजैकेट नामक एक छोटा सा कीड़ा भी। केवल कॉमिक्स लेखकों की ही बात नहीं है। संभवतः इसी कारण हनुमान चित्रकारों के भी प्रिय चरित्र रहे हैं- वे शत्रुओं के लिए भयास्पद, बच्चों के प्रिय (उन पर बनी एनीमेशन फिल्म की लोकप्रियता इसका प्रमाण है), चिरकुमार, वैयाकरण, विद्वान क्या कुछ नहीं हैं। अभी कुछ माहों पहले भोपाल में जब अंतर्राष्ट्रीय रामायण मेला हुआ तो उसमें विभिन्न देशों की प्रस्तुतियों में हनुमान ही एक ऐसे चरित्र थे जो सभी में समान रूप से लोकप्रिय हुए। रामलीलाओं में तो यह नित्यप्रति का अनुभव है। एम.एफ. हुसैन ने हनुमान पर खूब चित्र बनाए हैं। हनुमान द डिवोटी, हनुमान द वारियर, हनुमान लंकादहन जैसे उनके हनुमत चित्रों की एक लंबी श्रृंखला है। कहीं हनुमान राम, लक्ष्मण और सीता को कंधे पर बिठाकर ले जा रहे हैं, कहीं उनकी उड़ान का जादू है। हनुमान द वारियर में हुसैन ने जानबूझकर उन्हें मुख्य चित्र के लिए सेट की गई ग्रिड से बाहर निकलते हुए दिखाया है- हनुमान की यह अतिक्रांति उनके विस्फोटक बल

हनुमान यदि 'मसकसमान रूप कपि धरी' की स्थिति में आ जाते हैं तो बीस्ट ब्वाय भी संसार के किसी भी जंतु का रूप धारण कर सकता है। एक अन्य सुपरहीरोइन मिस्टीक भी रूपातिक्रांति की योग्यता से संपन्न है।

का ही निदर्शन है जिसे एम.एफ. हुसैन ने बहुत प्रज्ञावान तरीके से पकड़ा है। हुसैन ने एक काली पृष्ठभूमि पर हनुमान के योद्धा-स्वरूप की उजली रेखाएं खींची हैं। हनुमान 'द डिवोटी' में हुसैन ने हनुमान की भक्ति तो खैर दिखाई ही है, लेकिन उनके बाहुओं और जंघाओं में हनुमान का बल फूटा पड़ रहा है।

हुसैन किन्तु हनुमान-तत्व को समझ नहीं पाए, इसलिए उनकी हनुमान सीरीज़ हुसैन की कुंठा की अनवरत श्रृंखला का ही एक और उदाहरण है। मसलन उनके एक चित्र में नग्न सीता को हनुमान की पूंछ पर बैठा दिखाया गया है। यह शास्त्र सम्मत नहीं क्योंकि शास्त्रों में कहीं हनुमान द्वारा सीता को बचाकर ले जाते नहीं दिखाया, बल्कि सीता से हनुमान यही कहते हैं : '**कछुक दिवस जननी धरु धीरा/कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा**' ऐसा लगता है हुसैन के भीतर एक फ्रायडियन अतृप्ति बल्कि एक आसुरी अतृप्ति- रह गई है जो उन्हें इसी में एक साइकोपैथिक आनंद देती है। एक अन्य हुसैन पेंटिंग में तीन मुखी हनुमान हैं- शास्त्रों में भले ही पांच मुख बताए गए हैं लेकिन हुसैन की कलात्मक स्वतंत्रता को तर्क और तथ्य से क्या लेना देना- ये तीन मुखी हनुमान एक नग्न युगल (जिन्हें श्यामल बागची राम और सीता की नग्न आकृतियां कहे हैं), के सामने हैं और उनका खड़ा हुआ उत्तेजित लिंग उस युगल की स्त्री की ओर मुड़ा हुआ है। इसी श्रृंखला की तेरहवीं पेंटिंग में नग्न सीता नग्न रावण की जांघ पर बैठी हुई हैं और हनुमान रावण पर आक्रमण कर रहा है। हुसैन चित्र बनाते नहीं, चित्र तोड़ते हैं। हुसैन के लिए पैगंबर की पुत्री फातिमा को, मदर टेरेसा को, अपनी मां को, अपनी बेटी को पूरे कपड़ों में दिखाना जितना जरूरी है, उतना ही हनुमान, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, भारत माता, पार्वती को नंगा चित्रित करना भी जरूरी है। हुसैन की यह सफाई कि नग्नता उनके लिए शुद्धता का प्रतीक है- अपने सिवाय बाकी दुनिया को बेवकूफ समझने का नतीजा है। यदि नग्नता शुद्धता है तो फातिमा के लिए, मदर टेरेसा के लिये, अपनी मां-बेटी के लिए यह शुद्धता क्यों नहीं बताई गई? क्या इस तर्क के मान से वे अशुद्ध और अपवित्र हैं? हुसैन को नहीं लगता कि पार्वती भी किसी की बेटी हैं और सीता भी; जगत्जननी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तो सबकी माँ हैं, भारत माता भी उतनी ही मां हैं, जितनी मदर टेरेसा। हुसैन जैसों के बस का रोग 'अतुलित बलधामं' कहे जाने वाले हनुमान हैं ही नहीं। जो हुसैन उस इस्लामी रूढ़ि का बहुत आदर करते हैं जिनमें ईश्वर के चित्र नहीं दिखाए जाते क्योंकि वह 'फार्मलेस' है- 'रूप' से रहित- और जो कभी यह प्रश्न नहीं करते कि पैगम्बर के भी चित्र नहीं बनाना क्या यह कहना है कि वे भी 'फार्मलेस' थे, वे हुसैन हिन्दू धर्म की स्थापित मान्यताओं के विरुद्ध और 'आइकॉन-प्रोटोकॉल' के विरुद्ध चित्र बनाने की क्रांतदर्शिता का परिचय आसानी से दे लेते हैं। यह क्रांतदर्शिता उनके कला-स्वातंत्र्य समर्थकों को जितनी नजर आती है, वह कायरता उतनी नजर नहीं आती। रूढ़ि विरोध व्यक्ति के चरित्र में होता है कि चयन में? कहां तो हनुमान की क्रान्ति कि शत्रु देश भी निःसंकोच पहुंच जाते हैं और कहां हुसैन कि जो मातृदेश भी छोड़ जाते हैं।

बहरहाल हम बात कर रहे थे हनुमान के उस बल की जिसके जरिए वे बार-बार रूप बदल लेते हैं। पौराणिकियों, लोकवृत्तांतों, विज्ञान कथाओं और फंतासियों में बार-बार शेप-शिफ्टिंग प्रसंग आए हैं। यहां तक कि पुराने गुहानिवासी मानव के चित्रों तक में आदमी और पशु के बीच अंतरण के वर्णन मिलते हैं। मसलन लॅ त्रोई फ्रेरेज़ में द सोर्सरर नामक चित्र थीरियोन्थ्रोपी या जोअनथ्रोपी में विश्वास बहुत पुराना है। कई आदिम जनजातियों और आदिम वंशों में किसी 'पशु' से मानव वंश का उद्गम दिखाया जाता रहा है। मिस्र की पौराणिकी में रा, सोबेक, एनुबिस आदि कई देवता हैं जिनका आधा शरीर पशु का है। कई बार ऋषियों, मुनियों, देवताओं के शाप से भी प्रभावित पात्र की शेप-शिफ्टिंग हुई है। हनुमान की भिन्न-भिन्न रूप धारण करने की शक्ति स्वैच्छिक है। हनुमान की तरह ही स्थिति फैंटास्टिक फोर के फ्रैंकलिन की है जो एक नन्हें बच्चे के शरीर में एक जीवित देवता की शक्ति रखता है। हनुमान की सुपरस्पीड की नकल द फ्लैश और क्विकसिल्वर जैसे सुपरहीरो कॉमिक पात्रों में की गई है। उनका बल भी अद्भुत है। जिस वज्र के घात से उनके 'हनु' पर चोट पहुंची, उसी के कारण उनकी स्मृति वज्रांग (प्रचलित नाम बजरंग) के रूप में सुरक्षित हो गई। वे 'थंडरबोल्ट' की तरह याद किए जाते हैं।

बल के अनेक रूप हैं। नीत्शे या टिलिच की दृष्टि में कुछ और एडलर या मे (१९७२) जैसे मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में कुछ। पार्सन्स (१९६३) या डाहरेन्डार्क (१९५९) जैसे समाज वैज्ञानिकों के हिसाब से कुछ और मार्गेन्थु (१९६२) और साइमन (१९५७) जैसे राजनीतिविज्ञानियों की आँखों में कुछ। मसलन हमारे यहाँ वेदव्यास ने महाभारत के उद्योग

> *हुसैन को नहीं लगता कि पार्वती भी किसी की बेटी हैं और सीता भी; जगत्जननी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तो सबकी माँ हैं, भारत माता भी उतनी ही मां हैं, जितनी मदर टेरेसा।*

अरस्तू ने बल को एक ऐसी शक्ति के रूप में वर्णित किया जो परिवर्तन का स्रोत है, जो उसे क्रियान्वित करने की क्षमता है और जो एक ऐसी स्थिति है जिसके बिना चीजें अपने आप में जस की तस रहें। शक्ति गति का कारण है। आश्चर्य नहीं कि अतुलित बलधामं वातजातं भी हैं।

पर्व (३७/५२-५५) में कहा था-

बलं पंचविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत् तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते।।
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः।।
यत् त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
आभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम्।।
येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद् बालानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते।।

अर्थात्, राजन! आपका कल्याण हो। मनुष्यों में सदा पाँच प्रकार का बल होता है, उसे सुनिए। जो **बाहुबल** नामक प्रथम बल है, वह निकृष्ट बल कहलाता है। **मंत्री का मिलना** दूसरा बल है। मनीषी लोग **धन-लाभ** को तीसरा बल बताते हैं। पिता-पितामह से प्राप्त '**अभिजात**' नामक चौथा बल कहा गया है। हे भारत! जिससे इन सभी बलों को संगृहीत किया जाता है और जो सब बलों में श्रेष्ठ बल है, वह पाँचवां **बुद्धि-बल** कहा जाता है। आश्चर्य है कि इसके सहस्राब्दियों बाद समाज मनोवैज्ञानिक फ्रेंच एवं रेवन ने भी १९५९ में पाँच तरह की 'पावर' वर्णित कीं - पोजीशनल या लेजिटिमेट पॉवर जो किसी एक खास पोजीशन पर पहुँचने पर मिलती है, रेफरेन्ट पॉवर जो निष्ठा विकसित करवाने और दूसरों को आकर्षित करने पर निर्मित होती है, एक्सपर्ट पॉवर जो ज्ञान या कौशल की विशेषज्ञता पर निर्भर होती है, रिवार्ड पॉवर जो व्यक्ति के दूसरों की पुरस्कृत करने की शक्ति पर निर्भर करती है और कोएर्सिव पॉवर जो दंडित करने नुकसान पहुँचाने की शक्ति पर मुनहसिर है। हनुमान की रेफरेंट पॉवर शुद्धतम है। '**सो सब तव प्रताप रघुराई/नाथ न कछु मोर प्रभुताई।**' उनकी एक्सपर्ट पॉवर की ओर संकेत '**पवन तनय बल पवन समाना**' में है। कोएर्सिव पॉवर तो उन्होंने लंका दहन में दिखा भी दी।

वराहमिहिर के यहाँ भी बलों की चर्चा मिलती है। उन्होंने शब्द-बल का उल्लेख किया है जिसके अंतर्गत स्थान बल (पोजीशनल स्ट्रेंथ), दिग्बल (डायरेक्शनल स्ट्रेंथ), कालबल (टेंपोरल स्ट्रेंथ), चेष्टाबल (मोशनल स्ट्रेंथ), नैसर्गिक बल (नेचुरल स्ट्रेंथ) और दृक्बल (आस्पेक्चुअल स्ट्रेंथ) शामिल हैं। हनुमान के पास भले ही इसमें हर तरह का बल हो, लेकिन स्वयं उनकी सोच दूसरी है। पॉल टिलिच ने १९५४ में बल को स्व-स्थापन (सेल्फ-एफर्मेशन) के रूप में परिभाषित किया था और कहा था कि भले ही यह स्व-स्थापन स्व-समर्पण के रूप में हो। हनुमान का बल ऐसा ही है। वह राम के प्रति सम्पूर्ण समर्पण है। निष्ठा का उत्कर्ष। बीजमंत्र में तुलसी जिसे 'अतुलित बलधामं' कह रहे हैं, वही हनुमान स्वयं रावण को सुंदरकांड में किस बल की ओर ध्यान दिलाते हैं :

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया,
पाइ जासु बल बिरचति माया।।
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा,
पालत सृजत हरत दससीसा।।
जा बल सीस धरत सहसानन,
अंडकोस समेत गिरि कानन।।

हनुमान को अष्ट सिद्धि के दाता के रूप में भी वर्णित किया गया। अणिमा, ईशित्व, गरिमा, प्राकाम्य, प्राप्ति, महिमा, लघिमा और वशित्व- ये आठ सिद्धियां हनुमान को 'अतुलित बलधामं' तो बनाती ही होंगी। लेकिन तुलसी ने हनुमान को अतिबली न बोलकर बलधामं कहा। राम के लिये उन्होंने कहा- अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। इसलिए हनुमान को उन्होंने अतुलित बलधामं कहकर स्वयं को किसी तरह के अंतर्विरोध से भी सुरक्षित रखा। राम भले ही 'अतुलित बल' से सम्पन्न हों लेकिन राम के धाम तो स्वयं हनुमानजी हैं- '**जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।**'

अरस्तू ने बल को एक ऐसी शक्ति के रूप में वर्णित किया जो परिवर्तन का स्रोत है, जो उसे क्रियान्वित करने की क्षमता है और जो एक ऐसी स्थिति है जिसके बिना चीजें अपने आप में जस की तस रहें। शक्ति गति का कारण है। आश्चर्य नहीं कि अतुलित बलधामं वातजातं भी हैं। अतुलित बल है तो गति भी पवन सी है। वे ऐसे बल के स्वामी नहीं हैं जिसमें तमस हो। याद करें, तमस का एक पर्याय तीव्रबंध है। लेकिन हनुमान तो पवन की तीव्रता और क्षिप्रता वाले हैं। श्रीकृष्ण के पास एक प्रसंग में वे गरुड़ से बहुत पहले पहुँच जाते हैं और वैनतेय हांफते-हांफते जब श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं तो वहाँ हनुमान को काफी पहले से बैठा पाकर उनका गर्व मोचन होता है। उनकी गति उनकी सतत उद्यमशीलता में है। तमाम किस्म के निठल्लेपन और मट्ठरी के विरोध में है। वे काहिली के नहीं, कार्यशक्ति के निधान हैं। वे बदलाव लाने वाली शक्ति हैं। सुंदरकांड में एक तरफ जब सीता नैराश्य की उस हालत में पहुँच गई हैं कि आत्महत्या ही उन्हें एकमात्र मार्ग नज़र आता है, पवनपुत्र ही उनके मनोदृश्य में परिवर्तन लाते हैं। भगवान राम को भी वे ही सीता-शोध के जरिये निर्णायक युद्ध के लिये तत्पर कर देते हैं। '**अब बिलंबु केहि कारन कीजे ?**'■

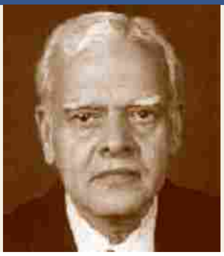

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ गज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

मंथन

अन्तरात्मा की भव्यता

THE GRANDEUR OF INNER SELF

PART 6

17. The mind fuctioning in first level loves to do whatever it likes and in the second level respects its life performances whereas in the third level it worships the life thanking the God for this gift.
 प्रथम स्तर में क्रियाशील मन को वही सब कुछ करना प्यारा लगता है जो उसे पसंद है और द्वितीय स्तर में वह जीवन द्वारा संपादित कार्य का आदर करता है जबकि तृतीय स्तर में वह जीवन को पूजता है, ईश्वर के द्वारा प्रदत्त इस जीवन रूपी उपहार पर धन्यवाद देता हुआ।

18. Mind is a link between the self on one side and body, senses and the alluring world on the other side. On one side is the real and on other the unreal.
 एक तरफ आत्मा और दूसरी तरफ शरीर, इन्द्रिय और प्रलोभन भरे संसार के बीच की कड़ी मन है। एक तरफ सत्य है और दूसरी तरफ असत्य।

19. Only they can differentiate the real and unreal who have the inner eye and blind are they that refuse to see and believe not what they see. Yet this differentiation is not enough; one has to understand in order to feel the consciousness and he that understands, attains him.
 वे ही सत्य व असत्य का भेद जान सकते हैं जिनके पास अन्तर्दृष्टि है और वे अन्धे हैं जो देखने से कतराते हैं तथा जो देखते हैं उस पर विश्वास नहीं करते। फिर भी मात्र विश्वास करना ही काफी नहीं है, उस ब्रह्म का अनुभव करने के लिये उसे समझना होता है और जो उसे समझ पाता है वही उसे पाता है।

20. One that deceives Him deceives himself, for the truth evades him and he stands deceived forever. The deceiver thus finds himself deceived in the multitudes of deceived.
 जो उसे धोखा देता है वह स्वयं को धोखा देता है क्योंकि सत्य उससे दूर भागता है तथा वह सदा धोखे में रहता है। धोखा देनेवाला, धोखा खानेवालों की भीड़ में स्वयं को धोखा खाया हुआ पाता है।

21. Therefore this knowledge is a must for destruction of evils and for establishing righteousness on firm footing. This is the need of the hour.
 अतः यह ज्ञान आवश्यक है बुराईयों विनाश के लिये हैं और अच्छाईयों दृढ़ स्थापना के लिये हैं। यही समय की आवश्यकता है।

22. Oh Mind! Know that for every soul is a temple, in which consciousness is enshirined with all its glory and from it radiates the immense power that every mind can enjoy.
 हे मन, जानो कि हर आत्मा एक मंदिर है, जिसमें ब्रह्म अपनी शोभा के साथ प्रतिष्ठित हैं और उसमें से हर एक मन को आल्हादित करनेवाली अपारशक्ति की किरणें निकलती हैं।

23. Oh Mind! Live not vainly. Die not unknown. Let not life appear like a dying echo in the fading memory of time.
 हे मन, व्यर्थ की जिन्दगी मत जियो। अनजान की तरह शरीर मत त्यागो। जिन्दगी को समय की बुझती यादों में मृतप्राय प्रतिध्वनि-सा मत दिखने दो।

> धमकाना, डराना, घृणा करना, हिन्सा, दुष्टता आदि का प्रयोग अधर्म है और इसलिये ये मनुष्य के बुनियादी अधिकारों की रक्षा करनेवाले हथियार नहीं हैं।

24. Oh Mind! Rise up in all splendour for the light you need is in the innerself and it is this light that has the glory of consciousness within you.
हे मन! संपूर्ण दिव्यता के साथ उठो क्योंकि जो प्रकाश तुम्हें चाहिये वह अंतरात्मा में है और यह वह प्रकाश है जो ब्रह्म की शोभा लिये तुममें चमक रहा है।

25. Remember, that God has made us fine to the extent possible and in intellectual matters He has made us supreme. For everyone He has created a brain to arouse curiosity and heart to analyse and these together make the mind to think.
याद रखो कि जितना हो सके उतना अच्छा ईश्वर ने हमें बनाया है और विद्वता की दृष्टि में उसने हमें परमश्रेष्ठ बनाया है। प्रत्येक के लिये विलक्षणता को जगाने मस्तिष्क की रचना की गई है और विश्लेषण करने के लिये हृदय और वे दोनों मिलकर मन को सोचने में सक्षम बनाते हैं।

26. So let the mind unite with the inner self to make life as God has wished it to be.
अतः मन को अंतरात्मा में समाहित हो जाने दो ताकि जीवन वैसे ही बने जैसा ईश्वर ने इसे बनाना चाहा है।

27. Oh Mind! Aim at making the human life sanctified with a nobler purpose --- one that also wipes out unrighteousness prevailing in all those minds that have hitch to merge with the self.
हे मन! मानव जीवन को उत्तम अभिप्राय के साथ शुद्ध करने का लक्ष्य रखो — एक ऐसा जो अंतरात्मा में समाहित होने से हिचकनेवाले सभी मन के भी अधर्म को हटा दे।

28. You have the right to think and infuse action in the right way. So misuse not this right, Oh Mind! You have no right to misuse the rights given by the Almighty.
तुम्हें सही तरह से सोचने और सही कर्म को ढालने का अधिकार है अतः इस अधिकार का दुरुपयोग मत करो। हे मन। तुम्हें परमेश्वर द्वारा प्रदत्त अधिकार का दुरुपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है।

29. Remember that there are also many rights won by the inner self for you and all of them lead to righteousness if the mind has the inclination to use them.
याद रखो कि कई अधिकार अंतरात्मा ने तुम्हारे लिये जीतकर रखे हैं और वे सभी धर्म की ओर ले जाते हैं यदि मन को उनके उपयोग की इच्छा हो।

30. Take heed that to impress one's own rights by curbing or crushing the rights of others is a satanic aptitude in human beings and therefore it is unrighteousness.
ध्यान रखो कि दूसरों के अधिकार को छीनकर या दबाकर स्वयं का अधिकार जताना मानव का पिशाची गुण है और इसलिये यह अधर्म है।

31. The basis need of meditation is to safeguard the rights of man as given to him by the Almighty.
मनन की बुनियादी आवश्यकता, ईश्वर द्वारा मानव को दिये गये अधिकारों की सुरक्षा है।

32. The use of intimidation, fear, hatred, violence, cruelty etc. are all unrighteousness and are therefore not the weapons to safeguard the basis rights of man.
धमकाना, डराना, घृणा करना, हिन्सा, दुष्टता आदि का प्रयोग अधर्म है और इसलिये ये मनुष्य के बुनियादी अधिकारों की रक्षा करनेवाले हथियार नहीं हैं।■

क्रमशः

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

राह का साथी

"कहते हैं मंत्र साधना में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ज्योतिषी में, दवा में और गुरु में जिसकी जैसी श्रद्धा होती है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है।"

किसी नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था ब्रह्मदत्त। एक बार उसे किसी दूसरे गांव में कोई काम आ पड़ा। वह चलने लगा तो उसकी मां ने कहा, "बेटा, अकेले न जाओ। किसी को साथ ले लो।"

लड़के ने कहा, "तुम इतना क्यों घबराती हो मां। इस रास्ते में कोई विघ्न-बाधा नहीं है। किसी को साथ लेने की क्या जरूरत है।"

मां ने देखा लड़का टस से मस नहीं हो रहा है तो उसने उसे एक केकड़ा देते हुए कहा, "अच्छा, कोई और साथी नहीं है तो तुम इस केकड़े को ही साथ ले लो। हो सकता है यही तुम्हारे किसी काम आ जाए।"

मां का मन रखने के लिये लड़के ने उस केकड़े को पकड़ कर कपूर की एक डिबिया में रख लिया और उसे एक झोले में डाल कर चल पड़ा। गर्मी के दिन थे। कड़ाके की धूप थी। वह कुछ दूर जाने के बाद एक पेड़ के नीचे आराम करने को रुका और वहीं सो गया।

इसी बीच उस पेड़ के कोटर से एक सांप निकला और रेंगता हुआ ब्राह्मण के पास चला आया। सांपों को कपूर की गंध बहुत भाती है इसलिए वह पोटली फाड़ कर उसमें रखी डिबिया को ही निगलने लगा। इसी बीच डिबिया खुल गई और डिबिया में रखे केकड़े ने निकल कर सांप का गला पकड़ लिया और उसकी जान ले ली।

ब्राह्मण की नींद खुली तो वह हैरान हो गया। देखता क्या है कि कपूर की डिबिया पर सिर टिकाए सांप मरा पड़ा है। उसे समझते देर न लगी कि यह डिबिया में रखे केकड़े का ही काम है। अब उसे अपनी माँ की कही बात याद आई कि अकेले कहीं नहीं जाना चाहिए। रास्ते के लिये कोई न कोई साथी जरूर ढूंढ लेना चाहिए। उसने सोचा, मैंने अपनी माँ की बात मान ली सो ठीक ही किया। कहते हैं, धनी लोगों पर विपदा आने पर उनका साथ कोई देता है और उनके दिन फिरने पर संपत्ति का भोग कोई करता है। चंद्रमा के पास जब एक भी कला नहीं रह जाती तो वह सूर्य की शरण में चला जाता है पर कलाओं के पूरा होने के साथ सूर्य से दूर होता चला जाता है और पूर्णिमा के दिन समुद्र के साथ अटखेलियां करने लगता है।

कहते हैं मंत्र साधना में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ज्योतिषी में, दवा में और गुरु में जिसकी जैसी श्रद्धा होती है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है।

यह कहानी सुनने के बाद सुवर्णसिद्धि भी अपने घर को वापस चल पड़ा। और जैसा कि आप देख रहे हैं, इसके साथ ही पंडित विष्णु शर्मा का पांचवां तंत्र तो पूरा हुआ ही, राजकुमार भी राजनीतिक दांव पेंच में इतने धाकड़ हो गए कि अब वे बड़े-बड़ों को पानी पिला सकते थे। विष्णुशर्मा ने ठीक ही कहा था कि उनके इस ग्रंथ का पाठ करने वाला और इसके उपदेशों का समझदारी से प्रयोग करने वाला इंद्र को भी कूटनीति में गच्चा दे सकता है। ■

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्ज्वल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

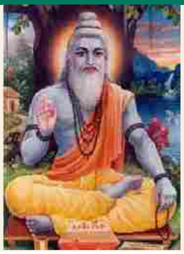

आचार्य द्रोण का अंत

महाभारत-कथा के पाठक जानते हैं कि घटोत्कच भीमसेन का हिडिंबा राक्षसी से उत्पन्न पुत्र था।

महाभारत के कथा पात्रों में दो ही बालक ऐसे हैं जो वीरता, धीरता, साहस, शक्ति, बल, शील, यश आदि सभी गुणों से युक्त और उज्ज्वल चरित्र के थे और वे थे अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु और भीमसेन का पुत्र घटोत्कच। दोनों ने ही पांडवों के पक्ष में अद्‌भुत वीरता के साथ युद्ध करके प्राणों का उत्सर्ग किया था।

महाभारत का आख्यान एक अद्‌भुत रचना है जिसमें मानव-जीवन के दु:ख-दर्द का सार आ गया है। करुण रस से पूर्ण यह धार्मिक ग्रंथ जीवन के दु:खों पर प्रकाश डालकर पाठकों को अजर-अमर सत्यरूप परमात्मा की ओर बढ़ने को प्रेरित करता है।

साधारण कहानियों व उपन्यासों का ढंग कुछ और ही होता है। वे या तो दुखांत होते हैं या सुखांत। सुखांत कथाओं का नायक रोमांचकारी घटनाओं और मुसीबतों को पार करता हुआ, अंत में अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है और अपनी मनचाही प्रेमिका से विवाह कर लेता है। पाठक का आकुलित मन इससे प्रसन्न हो उठता है। दुखांत-कथाओं का ढंग ठीक इससे उल्टा होता है, जिसमें प्रारंभ में तो घटनायें शुभ से शुभतर होती जाती हैं, परन्तु अंत में भारी दुर्घटना के साथ यवनिका पतन हो जाता है।

परंतु रामायण और महाभारत जैसी धार्मिक व प्राचीन रचनाओं की प्रणाली कुछ इस प्रकार की है कि जिससे पाठक का मन द्रवित हो जाता है। कभी वह आनंद की तरंगों में बहता है तो कभी दु:ख की आंधी उसे झंझोड़ देती है। मन की भावनायें पल-पल बदलती जाती हैं और परिणाम में पाठक परमात्मा की शरण लेकर सुख-दु:ख से ब्राह्मी-स्थिति को पहुंचने के लिये प्रेरित होता है।

दोनों तरफ ईर्ष्या-द्वेष एवं प्रतिहिंसा की जो आग भड़क रही थी, वह इतनी प्रबल हो उठी कि केवल दिन के समय लड़ने से ही उसकी संतुष्ट नहीं किया जा सका। चौदहवें दिन, सूर्य के डूबने के बाद भी युद्ध जारी रखने के लिये मशाल जलाये गये। रात का समय था। घटोत्कच और उसके साथियों ने भयानक माया-युद्ध शुरू कर दिया। रात के समय की उस लड़ाई का दृश्य अद्‌भुत था। वह एक ऐसी घटना थी जैसी भारत देश में पहले कभी नहीं हुई थी। हजारों मशालें जल रही थीं और दोनों ओर के वीर अपनी-अपनी सेना को युद्ध के लिये उत्साहित कर रहे थे।

कर्ण और घटोत्कच में उस रात बड़ा भयानक युद्ध हुआ। घटोत्कच और उसकी पैशाची सेना ने बाणों की वह बौछार की कि जिससे दुर्योधन की सेना के झुण्ड-के-झुण्ड वीर मारे जाने लगे। प्रलय-सा मच गया। यह देखकर दुर्योधन का दिल कांपने लगा।

कौरव-वीरों ने कर्ण से अनुरोध किया कि किसी-न-किसी तरह आज घटोत्कच का काम तमाम करना चाहिये। उन्होंने कहा- "कर्ण! आप इसी घड़ी इस राक्षस का वध कर दो! वरना हमारी सेना तबाह हो जायेगी। इसको शीघ्र ही मृत्युलोक पहुंचाओ।"

घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीड़ा पहुंचाई थी कि वह भी क्रोध में भरा हुआ था। कौरवों का अनुरोध सुनकर उसकी उत्तेजना और भी प्रबल हो उठी। वह आपे में न रहा और इन्द्रदेव की दी हुई शक्ति का, जिसे उसने अर्जुन का वध करने के उद्देश्य से यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा था, घटोत्कच पर प्रयोग कर दिया।

इससे अर्जुन का संकट तो टल गया पर भीमसेन का प्रिय एवं वीर पुत्र घटोत्कच मारा गया और उसकी लाश आकाश से जमीन पर धड़ाम से आ गिरी। पांडवों के दु:ख की सीमा न रही।

इतने पर भी युद्ध बंद नहीं हुआ। द्रोणाचार्य के धनुष से बाणों की ऐसी तीव्र बौछार हो रही थी जिससे पांडव-सेना के असंख्य वीर गाजर-मूली की तरह कट-कटकर गिरते जाते थे। रहे-सहे पांडव-सैनिक भी भयभीत हो उठे।

यह देख श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले- "आज युद्ध में द्रोण को परास्त करना किसी की शक्ति में नहीं है। जब तक इनके हाथों में शस्त्र हैं तब तक धार्मिक युद्ध लड़कर उन पर विजय नहीं पाई जा सकती। धर्म के विरुद्ध चलकर ही- कुछ कुचक्र रचकर ही- इनको परास्त करना होगा और आज अगर वह परास्त न हुए तो हमारा सर्वनाश कर देंगे। इसलिये किसी प्रकार द्रोण यह सुन लें कि अश्वत्थामा मारा गया, तो वह शोक में पड़कर हथियार फेंक देंगे। इसलिये किसी को आचार्य के पास जाकर यह खबर पहुंचानी चाहिये कि अश्वत्थामा मारा गया।"

यह सुनकर अर्जुन सन्न रह गया। इस प्रकार असत्य-मार्ग का अनुकरण करना उसे ठीक न जंचा। उसने ऐसा करने से साफ इनकार कर दिया। पांडव-पक्ष के दूसरे वीरों ने भी इसे नापसंद किया। किसी का भी मन नहीं मानता था कि ऐसा अधर्म-कार्य करें। लेकिन युधिष्ठिर ने काफी सोच-विचार के बाद कहा कि यह पाप मैं अपने ही ऊपर लेता हूं।

अमृत की प्राप्ति के लिये जब समुद्र-मंथन हुआ, जब देवताओं का संकट दूर करने के लिये भगवान महादेव ने स्वयं विषपान किया था। आश्रित मित्र की रक्षा के लिये भगवान रामचन्द्र ने वानर-राज बाली का अन्यायपूर्वक वध करके पाप का भार अपने ऊपर लिया था। ठीक उसी तरह युधिष्ठिर ने भी अपने सुयश पर पाप-कालिमा का इरादा कर लिया कि जिससे औरों का संकट दूर हो सके।

इस व्यवस्था के अनुसार भीम ने गदा-प्रहार से अश्वत्थामा नाम के एक भारी लड़ाके हाथी को मार डाला। फिर द्रोण की सेना के पास जाकर जोर से चिल्लाने लगा- "मैंने अश्वत्थामा को मार डाला है।" परन्तु सपने में भी नीच काम करने का विचार न करने वाले भीमसेन को भी वह झूठी बात कहते हुये बड़ी लज्जा आई।

उधर युद्ध करते हुये द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना ही चाहते थे कि इतने में भीमसेन की आवाज उनके कानों में पड़ी। जब उन्होंने सुना कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया तो वह विचलित हो गये। साथ ही उन्हें इस बात की सच्चाई पर शक हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा- "बेटा युधिष्ठिर! क्या यह बात सच है कि मेरा प्रिय पुत्र अश्वत्थामा मारा गया?"

आचार्य द्रोण को विश्वास था कि युधिष्ठिर तीनों लोकों के आधिपत्य के लिये भी झूठ नहीं बोलेंगे। इसी कारण उन्होंने युधिष्ठिर से ही यह प्रश्न किया था।

यह देखकर श्रीकृष्ण चिन्तित हो उठे। उन्हें भय हुआ कि कहीं युधिष्ठिर अपनी धर्म-परायणता के कारण पांडवों के नाश का कारण न बन जायें।

युधिष्ठिर असत्य बोलते हुए डरे, पर विजय प्राप्त करने की लालसा भी उनको विकल कर रही थी। वह बड़ी दुविधा में पड़ गये। फिर भी किसी तरह जी कड़ा करके जोर से बोले- "हां, अश्वत्थामा मारा गया।" परंतु यह कहते-कहते फिर उनको धर्म का भय हो आया। इस कारण अंत में धीमे स्वर में यह भी कह दिया- "मनुष्य नहीं, हाथी।" दूसरे ही क्षण भीम ने तथा अन्य पांडवों ने जोरों का शंखनाद और सिंहनाद किया कि युधिष्ठिर के अंतिम वचन उस शोर में लुप्त हो गये।

उस दिन की इन घटनाओं का हाल सुनाते हुये संजय ने कहा- "राजन्! इस प्रकार युधिष्ठिर के असत्य-भाषण के कारण बड़ा अधर्म हो गया।"

> *धृष्टद्युम्न ने ध्यान-मग्न आचार्य की गर्दन पर खड्ग से जोर से वार किया। आचार्य द्रोण का सिर तत्काल ही धड़ से अलग होकर गिर पड़ा। भरद्वाज-पुत्र द्रोण की आत्मा दिव्य ज्योति से जगमगाती हुई स्वर्ग सिधार गई।*

पौराणिक कहते हैं कि जैसे ही युधिष्ठिर के मुंह से यह असत्य बात निकली त्यों ही उनका रथ, जो पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर-ही-ऊपर चलता रहा था, एकदम जमीन से लगकर चलने लगा।

तात्पर्य यह कि संसार झूठ का आदी हो चुका था, इस कारण युधिष्ठिर के सत्य-भाषण का उससे कोई संबंध न था। पर अब, जबकि जीत पाने की इच्छा से उन्होंने भी असत्य-भाषण किया तो उनका रथ भी पापी धरातल से जा टिका।

युधिष्ठिर के मुंह से यह सुनते ही कि अश्वत्थामा मारा गया, द्रोण के मन में विराग छा गया। जीवित रहने की इच्छा ही उनके मन में न रही। जब वह इस मनःस्थिति में थे तभी भीमसेन कठोर वाक्वाणों से उनको और सताने लगा। वह बोला- "ब्राह्मण लोगों के कर्तव्यभ्रष्ट हो जाने के कारण और क्षत्रियोचित वृत्ति धारण कर लेने के कारण ही क्षत्रियों पर यह विपदा आ गई। यदि ब्राह्मण लोगों ने अधर्म का मार्ग न अपनाया होता, तो कितने ही क्षत्रिय राजाओं के प्राण बच गये होते। आप तो इस तथ्य से परिचित हैं ही कि अहिंसा ही उत्कृष्ठ धर्म है और यह भी जानते हैं कि ब्राह्मण ही उस महान धर्म के आधार स्तम्भ माने जाते हैं। फिर स्वयं आप भी तो उच्च ब्राह्मण कुल के हैं। तब आपने हिंसा-वृत्ति क्यों अपनाई और स्वार्थ-वश होकर पाप करने पर क्यों तुले हुए हैं?"

एक तो यों ही पुत्र के बिछोह की खबर सुनकर द्रोण के मन से प्राणों का मोह टूट चुका था और वैराग्य छा रहा था, ऊपर से भीमसेन के मुंह से यह कड़वी बातें सुनकर उन्हें और भी सख्त पीड़ा पहुंची। उन्होंने तुरंत अपने सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और रथ पर ही आसन जमाकर, ध्यानमग्न होकर बैठ गये।

इतने में द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न हाथ में तलवार लेकर द्रोण पर झपटा। यह देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया और इसी हाहाकार के बीच धृष्टद्युम्न ने ध्यान-मग्न आचार्य की गर्दन पर खड्ग से जोर से वार किया। आचार्य द्रोण का सिर तत्काल ही धड़ से अलग होकर गिर पड़ा। भरद्वाज-पुत्र द्रोण की आत्मा दिव्य ज्योति से जगमगाती हुई स्वर्ग सिधार गई।■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्वुन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल-४६२०१६ ईमेल : prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

अस्यवामीय सूक्त

(ऋग्वेद मंडल-१ सूक्त १६४)

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्क-मर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्
वाकेन वाकम् द्विपदा चतुश्पदः ऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः।२४।

ऋचा गायत्री बनाती है
ऋचा से साम रचते हैं
वाक् त्रिष्टुभ बनाती है
वाक् वाणी की परम् सत्ता
चतुष्पद, द्विपद अक्षर से
सप्तधा स्वर निकलते हैं।

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्
गायत्रस्य समिधास्तिस्त्र आहु-स्ततो मन्हा प्र रिरिचे महित्वा।२५।

गगन में उसने किया सुस्थित
तब सिन्धु जगती से
और देखा वहां रवि को
युक्त पृथिवी से
समिधा तीन गायत्री
कही जातीं
यही है श्रेष्ठता
इसकी महत्ता।

उप हये सुदुघाम् धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोह्देनाम्
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो ऽभीद्धो धर्मस्तदु षु प्र वोचं।२६।

सुदुग्धा धेनु का आह्वान् करता हूं
जिसे गोपाल उत्तम हाथ से दुहले
देव सविता दुग्ध की अभिवृद्धि दे
पात्र अब तैयार है
यह घोषणा मेरी।

हिंकृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्सिमच्छन्ती मंसाभ्यागात्
दुहाम्श्विभ्याम् पयो अध्नेयम् सा वर्धतां महते सौभगाय।२७।

सभी ऐश्वर्य, वसुओं की विधात्री
वत्सला मन कामना से रंभाती
वह धेनु आती है
दुग्ध देकर अश्विनी के कुमारों को
हमारे सौभाग्य, सुख की अब विधात्री हो।

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिंक्रिनोण्मात्वा उ
सृक्काणम् धर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः।२८।

निकट जाकर दुलारती है प्यार से
वह नयन मूंदे वत्स अपना
रंभाती सिर चाटकर उसका
थनों के पास मुंह लाती
उसे धारोष्ण पय से तृप्त कर देती।

अयं स शिन्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वस्नावधि श्रिता
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यम् विद्युत भवन्ती प्रति वव्रिमौहत।२९।

किरण-माला को ढंके बादल
रव तीव्र करता
गर्जना रत मेघ में आश्रित, तड़ित
भव, भूमि, मानव आदि की रचना-प्रक्रिया
रूप धर लेती मनोहारी।

■

परेश दत्त द्वारी

संगीत-कलाकार। कृतियाँ गीत-गुंजन, तरुण-संगीत-गुंजन, संगीत-कला, सुर-संगीत, मसीह-संगीत-साधना तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सर्वश्रेष्ठ-शिक्षक पुरस्कार, श्रेष्ठ-शिक्षक-पुरस्कार, बिरसा मुंडा-ज्योति-सम्मान एवं झारखण्ड-रत्न से सम्मानित। विश्व सेवा समिति, राँची द्वारा संगीत के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाओं के लिये 'झारखण्ड सेवारत्न अवार्ड' से पुरस्कृत। सम्प्रति - संगीत-शिक्षक, हाई स्कूल, राँची, झारखण्ड।

सम्पर्क : pareshdutt@gmail.com

गीता-गीत

ज्ञान कर्म संन्यास योग

खंड-४

इसीलिए जो भक्त तत्व से मुझे जानकर जीता है
कर्मों में रहकर भी बंधन से वह मानव रीता है।
पहले भी यों कर्म हुए हैं मर्म चित्त में अब तू धर
हे अर्जुन! पूर्वजों की तरह बस अब तू निज-कर्म कर।।

कर्मा-कर्मों की दुविधा में बुद्धिमान भी फँस जाते
कर्मों के बंधन से हट जा कर्म तत्व हम समझाते।
कर्म में मानव अकर्म देखे अकर्म में जो नर कर्म
बुद्धिमान नर वह है योगी जिसने जान लिया यह मर्म।।

जिसके सभी स्वकर्म बिना संकल्पों के ही होते हैं
ज्ञान-अग्नि से उन्हें भष्म करते वे पंडित होते हैं।
ऐसे नर मन में फल की इच्छा को कर देते हैं चूर
कर्मों को करके भी वे नर रहते हैं कर्मों से दूर।।

वही जितेन्द्रिय होते जो भोगों की सामग्री को तजते
देह-कर्म करने वाले भी वे नर निष्पापी रहते।
स्वतः प्राप्त से तृप्त रहे जो मन में इच्छा शेष नहीं
ऐसा मन निर्मल बन जाता जहाँ न ईर्ष्या-द्वेष नहीं।।

हर्ष और शोकादि-द्वंद्व से जो नर ऊपर रहता है
सिद्धि-सिद्धि में वह सम रहता नहीं कर्म से बंधता है।
मोह, देह-अभिमान, लोभ से रहित हुआ जो जाता है
चित्त निरंतर परमात्मा के सहित हुआ वह जाता है।।

ऐसे नर के कर्म सभी तो यज्ञ-तुल्य होने लगते
कर्म-बंध भी नहीं बाँधते उनको, वे खोने लगते।
जहाँ यज्ञ में अर्पण अर्पित सभी मात्र होते हैं ब्रह्म
क्रिया वहाँ है ब्रह्म यज्ञ-फल भी हो जाता है ब्रह्म।।

कुछ योगी तो देवी-पूजन-रूप यज्ञ ही करते हैं
तो कोई परब्रह्म-दहन में आत्म-हवन कर लेते हैं
शब्द आदि विषयों को इन्द्रियानल में कोई दे देते
कोई इन्द्रियों को ही संयमवाले अनल में देते हैं।
इन्द्रिय-प्राणों की क्रियाओं को कोई-कोई योगी तो
आत्म-संयमरूप अगन में हवन ही किया करते हैं।।

■

क्रमशः

रवि पेरी

विशाखापट्टनम, आंध्रप्रदेश में जन्म। फार्मेसी में स्नातक (बी.फ़ॉर्मा, एम.फ़ॉर्मा) एवं बफैलो के एस.यू.एन.वाय. विश्वविद्यालय से फार्माकोलॉजी में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। चिन्मय मिशन के केदार आश्रम में स्वयंसेवक। बच्चों को बालविहार में हिन्दू साहित्य तथा धर्म का प्रशिक्षण देते हैं। हिन्दी एवं संस्कृत के अध्ययन में अभिरुचि। सम्प्रति ब्रिस्टल मयर्स स्क्विब्ब कंपनी में वैज्ञानिक हैं तथा फ़िलेडैल्फ़िया के समीप न्यूटाउन शहर में रहते हैं।

सम्पर्क : r_rperi@yahoo.com

गुण त्रय विभाग योग

पार्थ को बोधित किया परमपूज्य परमधाम ने,
संसार से मुक्त सिद्धों के सर्वोत्तम ज्ञान से।
इस ज्ञान का आधार ले मनुज भगवत्तुल्य हो जाते हैं,
सृजन और संहार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

ब्रह्मरूपी जिस बृहत् योनि में सचराचर ब्रह्माण्ड है,
वही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान है।
संसार की सब योनियों में जीव जो विद्यमान हैं,
उनके मूल और बीज स्वयं श्रीकृष्ण परमधाम हैं।

अजर अविनाशी जीव को नश्वर देह से जकड़े तीन गुण हैं,
सत्त्व, रजस् और तम, ये प्रकृति से ही उत्पन्न हैं।
अविकारी निर्मल ज्योतिर्मय सत्त्व बाँधता है नर को,
सुख सम्बन्धों से, ज्ञान से, दर्पोहङ्कार से।

फलासक्ति भी कर्मबद्ध करती है नर को,
रज से उद्भव तृष्णा और इच्छाओं की पहचान है यह।
अज्ञान और मोह से उत्पन्न तम जकड़ता है काया,
अकर्मण्यता से, प्रमाद से, आलस्य और निद्रा से।

सत्त्व सुख में, रज कर्म के पाश में नर को बाँधता है,
ज्ञान को ग्रस तम भी प्रमाद में नर को बाँधता है।
त्रिगुणों मे परस्पर वैमनस्य और स्पर्धा होती सर्वदा,
दो को परास्त कर ही तीसरा उभरता है सदा।

ज्ञान और विद्या की लौ से नवद्वारों को कर ज्योतिर्मय,
सुषुप्त चैतन्य को जागृत करे मात्र सत्त्व ही।
स्वार्थोत्पन्न लोभ और अतृप्त लालसा जब कर्म के कारक बनें,
रजोगुण की प्रबलता को सहज ही पहचान लें।

तिमिरान्धकार जब इन्द्रियों को जकड़े,
मोह और प्रमाद सर्वत्र फूले-फले,
तमोगुण की व्याप्ति को सहज ही पहचान लें ।
सत्त्व की पराकाष्ठा में जो नर देह का निष्कास करें,
उत्तम लोकों में परिशुद्ध यतियों की संगति को प्राप्त करें।

महत्वाकांक्षाओं में जो हो निर्देह, आसक्त मनुष्यों में जन्म लें,
तमोन्धकार में देह तज, पशु कीट पतंगों में जन्म लें।
कर्मफल सर्वस्व गुणानुकूल रहते हैं सदा,
सत्त्वफल निर्मल, रज दुखद्, तम अन्धकारमय सदा।

सत्त्व से उपजे ज्ञान, रज् से अतृप्त लालसा,
तम से केवल उपजे प्रमाद, मोह, अज्ञान सदा।
त्रिगुणों के गंतव्य पृथक् और गरिमा भिन्न हैं सदा,
उपरोन्मुख सत् श्रेयस्कर है, रज मध्यम, तम निन्दनीय सदा।

नर जब द्रष्टा बन जाता है कर्म गुणों से परे हो जाते हैं,
प्रकृति को ब्रह्ममय जो पहचाने उस परम तत्त्व में जा के मिले।
देहोत्पन्न त्रिगुणों को जो नर सहज भाव से लांघ सके,
जीवन-मरण जरा से उन्मुक्त अमृतत्त्व का पान करे।

हे प्रभु इन गुणों से मुक्ति का मार्ग आप हमें प्रदर्शित करें,
उन्मुक्त पथिकों के स्वभाव और आचरणों से हमें अवगत करें।
प्रभु बोले सुन अर्जुन गुणातीत वह स्थिर नर है,
जो ब्रह्मलीन हो द्रष्टा बन, इनके आने-जाने पर अविचल है।

दुःख में सुख में गुणातीत सम, कंचन, प्रस्थर, धूल समान,
प्रियों और अप्रियों में सुस्थिर, स्तुति और निंदा एक समान।
जिनको मान अपमान समान, मित्र और शत्रु एक समान,
करके कतृत्व का परित्याग गुणातीत कहलाते महान।

प्रेमभक्ति से जो श्रद्धालु ईश्वर का अनन्य स्मरण करें,
गुणबन्धन को लांघ सुनिश्चित ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनें।
उस परमब्रह्म में स्थापित हो, अविनाशी अमृतत्त्व का पान करे,
उस शाश्वत आनन्दमय सुख का, श्रीकृष्ण मात्र एक आश्रय हैं।

■

सुप्रभा गुप्ता

कानपुर में जन्म। डी.ए.वी. कॉलेज कानपुर से जीव विज्ञान, रसायन शास्त्र एवं वनस्पति शास्त्र में स्नातक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख एवं कविताएँ प्रकाशित। १९९९ में अमेरिका पहुँची। सम्प्रति- शिकागो में निवास।

सम्पर्क : Gupta.suprabha@gmail.com

कविता

आना निश्चित है

पलकों के द्वार खुले रखना प्रिय
मैं निश्चय ही आऊँगा
चंचल चपल दामिनी जैसा
आकर विस्मित कर जाऊँगा।

यहाँ नहीं तो वहाँ सही
धरा नहीं अम्बर ही सही
मैं तुमसे मिलने आऊँगा
रोम-रोम में रची-बची हो
कैसे तुम्हें भुला में पाऊँगा।

याद तुम्हारी प्रेरणा बनकर
मन को उल्लासित करती है
तुम मेरी हो केवल मेरी सोच
मुझमें नवजीवन भर देती हो
पन्थ निहारते थके नयनों को
आकर तृप्त कर जाऊँगा।

कोई खुशी कोई भी पर्व
तुम बिन सभी अधूरे हैं
कोई महफिल कोई भी स्वप्न
हुये तुम बिन क्या पूरे हैं
स्वप्नों की मृगतृष्णा से
कब तक मन को बहलाऊँगा

जन्म-जन्म की कसमें खाई
फिर क्योंकर मन शंकित है
अंतर की भाषा अंतर जाने
फिर तुमसे कैसा छल है
दग्ध होती मन की ज्वाला को
पल में शान्त कर जाऊंगा

बन्द द्वार खुले रखना प्रिय
मैं निश्चय ही आऊँगा...

■

विजय कुमार सिंह
१३ मार्च १९५२ को बुलंदशहर में जन्म। बी.एस-सी. (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), एम.ए. हिंदी (मेरठ विश्वविद्यालय), एल.एल.बी. (मेरठ विश्वविद्यालय)। आठ वर्षों तक बुलंदशहर में अधिवक्ता के रूप में कार्यरत, पच्चीस वर्षों तक श्रम प्रवर्तन अधिकारी के रूप में उत्तर प्रदेश श्रम विभाग में कार्य। कविता संग्रह *वल्लकी* (श्रीमती कुसुम चौधरी के साथ), *स्पंदन*, *स्तवन* प्रकाशित। सम्प्रति - स्वैच्छिक सेवानिवृति के बाद ऑस्ट्रेलिया में निवास।

सम्पर्क- 2/1076, pacific highway, Pymble, NSW2073, Australia Email : vksingh52@hotmail.com

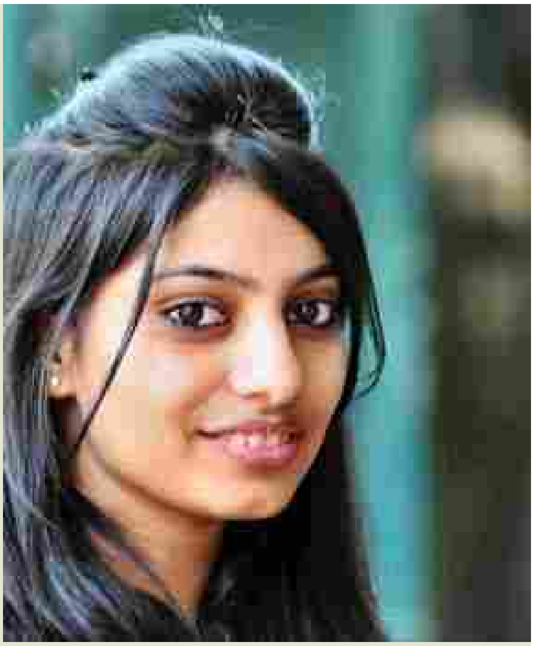

कहो शेर कह दूँ रुबाई सुना...

कहो शेर कह दूँ रुबाई सुना दूँ
सुना दूँ कहो तो मैं कोई ग़ज़ल
कहूँ मैं कि पूनम का है चाँद तू ही
तू ही तो जैसे खिला-सा कमल।

तेरी ज़ुल्फ़ लहरातीं काली घटाएँ
उड़ती है कांधे तेरे बार-बार,
गालों पे तेरे पड़ते भँवर से
जिन्हें देखते मुझको आता करार।

कहूँ मैं कि तुझसे हंसीं शाम मेरी
मेरी ही तुझसे सुहानी सहर
कहूँ मैं कि पूनम का है चाँद तू ही
तू ही तो जैसे खिला-सा कमल।

तेरी मुस्कराहट से लगता है ऐसे
आयी है जैसे फिर से बहार
जब भी तू बोले लगता है ऐसा
जैसे बजा हो अभी एक सितार

कहूँ मैं कि तुझसा न दूजा है कोई
कोई न दूजा है मेरी नज़र
कहूँ मैं कि पूनम का है चाँद तू ही
तू ही तो जैसे खिला-सा कमल।

आँखों में झाँकूँ जब भी तुम्हारी
होता है मुझको अनोखा खुमार
दिल में मेरे एक तेरी ही छवि है
मन में बसा है तेरा ही प्यार।

कहूँ मैं कि तुझसे है प्यार कितना
कितना हैं तुझसे मेरे हमसफर
कहूँ मैं कि पूनम का है चाँद तू ही
तू ही तो जैसे खिला-सा कमल।
■

वो तेरी मुझपे नज़र...

वो तेरी मुझपे नज़र, वो तेरा मुस्काना,
जैसे खिलता हो कमल, वो तेरा खिल जाना।
हम तो सोचा ही किये, रात भर सोये नहीं ,
हम तो जागा ही किये, रात भर सोये नहीं।

वो तेरे पड़ते कदम, वो तेरा पास आना,
हो कोई बादे सबा, मुझे आ महकाना।
हम तो सोचा ही किये, रात भर सोये नहीं,
हम तो जागा ही किये, रात भर सोये नहीं।

वो तेरे हिलते अधर, वो तेरा कह जाना,
जैसे हो गीत मधुर, कानों में पड़ जाना।
हम तो सोचा ही किये, रात भर सोये नहीं,
हम तो जागा ही किये, रात भर सोये नहीं।

वो मुझे छूना ज़रा, वो तेरा घबराना,
किसी छुइमुइ की तरह, वो तेरा शरमाना।
हम तो सोचा ही किये, रात भर सोये नहीं,
हम तो जागा ही किये, रात भर सोये नहीं।
■

सुशान्त सुप्रिय
२८ मार्च, १९६८ को पटना में जन्म। कथा-संग्रह 'हत्यारे' और 'हे राम' तथा काव्य-संग्रह 'एक बूँद यह भी' एवं अंग्रेज़ी काव्य-संग्रह 'इन गाँधीज़ कंट्री' प्रकाशित। रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। सम्प्रति - संसदीय सचिवालय, दिल्ली में अधिकारी हैं।
सम्पर्क - ५१७४, श्यामलाल बिल्डिंग, बसंत रोड, पहाड़गंज, नई दिल्ली-५५ ई-मेल : sushant1968@gmail.com

कविता

स्टिल-बॉर्न बेबी

वह जैसे
रात के आईने में
हल्का-सा चमक कर
हमेशा के लिए बुझ गया
एक जुगनू थी

वह जैसे
सूरज के चेहरे से
लिपटी हुई
धुँध थी

वह जैसे
उँगलियों के बीच में से
फिसल कर झरती हुई रेत थी

वह जैसे
सितारों को थामने वाली
आकाश-गंगा थी

वह जैसे
ख़ज़ाने से लदा हुआ
एक डूब गया
समुद्री-जहाज़ थी
जिसकी चाहत में
समुद्री-डाकू
पागल हो जाते थे

वह जैसे
कीचड़ में मुरझा गया
अधखिला नीला कमल थी...

ग़लती

शुरू से ही मैं चाहता था
चाँद-सितारों पर घर बनाना
आकाश-गंगाओं और नीहारिकाओं की
खोज में निकल जाना

लेकिन बस एक ग़ल्ती हो गई
आकाश को पाने की तमन्ना में
मुझसे मेरी धरती खो गई।
■

प्रो. डॉ. पुष्पिता अवस्थी

कानपुर में जन्म. पढ़ाई राजघाट, वाराणसी के प्रतिष्ठित जे. कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन में हुई. १९८४ से २००१ तक वसंत कॉलेज फ़ॉर विमैन के हिन्दी विभाग की अध्यक्ष रहीं. सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन की संयोजक. एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित. विभिन्न साहित्यिक विभूतियों पर डॉक्यूमेंटरी फिल्मों का निर्माण. जापान, मॉरिशस, अमेरिका, इंग्लैंड सहित अनेक कैरिबियन देशों में काव्य-पाठ. सम्प्रति - नीदरलैंड स्थित 'हिन्दी यूनिवर्स फाउंडेशन' की निदेशक हैं.

सम्पर्क : Postbus 1080, 1810 KB Alkmaar, The Netherlands. email : pushpita.awasthi@bkkvastgoed.nl

नाखून

आदमी
धीरे-धीरे कुरता है -
अपनी औरत को
जैसे-
वह
उसके ही हाथ का
नाखून हो।

जोंक

आदमी
चूमते हुए चाटता है- औरत को
जोंक की तरह
बाहर से भीतर तक।

ताबूत

औरत की देह ही
औरत का ताबूत है
जिसे वह
जान पाती है-
उम्र ढलने के बाद

जीवन भर
एक ही यात्रा
भौतिक ताबूत से
दैहिक ताबूत तक।

ग्रेवयार्ड

एक ग्रेवयार्ड से
गुजरते हुए औरत
सोचती है-
चलती हुई कारों के
उस पार
मृतकों का ग्रेवयार्ड है
और
इस पार
चलते और चलाते हुए मनुष्यों का
जिंदा ग्रेवयार्ड।

■

कविता-संग्रह 'शब्दों में रहती है वह' में संकलित

अनिल के. प्रसाद

हथुआ, बिहार में जन्म। अँग्रेजी साहित्य में बी.ए. (ऑनर्स), एम.ए. एवं यू.जी.सी. के अंतर्गत पी.एच.डी. साहित्य अकादमी के लिए यशपाल के 'झूठा सच' के कुछ अंशों का अँग्रेजी में अनुवाद। भारत, मिडिल ईस्ट, अमेरिका, चाइना, कनाडा एवं ऑस्ट्रिया में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में पेपर एवं कविता पाठ। अंग्रेजी और हिंदी में लेखन। यमन, लीबिया, पटना एवं मुंबई के विश्वविद्यालयों में अध्यापन। सम्प्रति : सलमान बिन अब्दुलअज़ीज़ विश्वविद्यालय, सऊदी अरेबिया में अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के प्रोफेसर।

सम्पर्क : bunulaniljyo@gmail.com

कविता

युद्ध

मैं
अकेला
नहीं हूँ
इस युद्ध में
और बहुत सारे लोग हैं
आगे बढ़कर चौराहे पर
ज़रा खड़े होकर देखो
अपने आसपास, ऐ मित्र!

मर्द-औरत, सपरिवार, अकेले,
अकेले, इस मैदान के मध्य
आ रहे हैं निरंतर
युद्ध में हिस्सा लेने के लिए
तुमको दुस्साहस लगता होगा
लेकिन ज़रा सोचो
उनके चेहरों को देखो ध्यान से
अन्दर कितना द्वंद्व छिपाए
चल रहे हैं
अभी अपने मुल्कों को जाकर
वहां कितनी लड़ाइयाँ लड़नी हैं, छोटी-बड़ी
यहाँ तो हृदय के कुरुक्षेत्र पर
कितनी सेनाएं आमने-सामने खड़ी हैं
दिन-रात शंखनाद सुनाई दे रहा है
द्वंद्व और अंतर्द्वन्द्व का

अर्थ-धर्म-मानवधर्म
घर छोड़कर दूर सुदूर
एक नई ज़मीन, नए लोग, नई भाषा
के बीच की विडम्बना के चलते भी
कई छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ
लड़नी पड़ती हैं रोज़

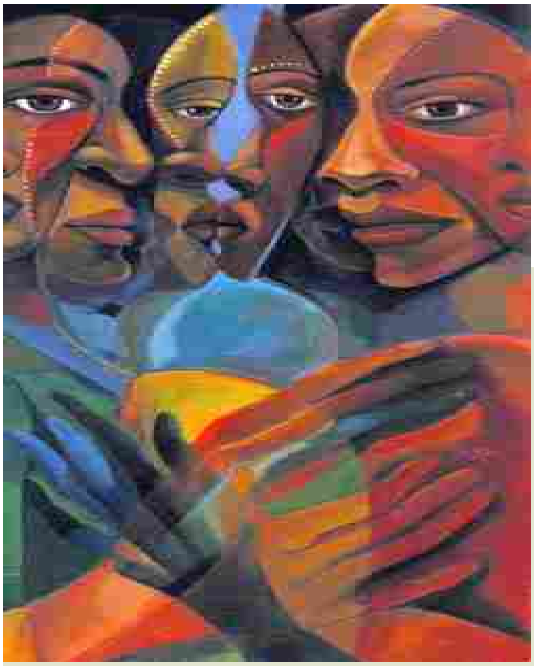

मित्र,
तुमने ठीक ही कहा था कल
कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व
हमें अपने अहम् को भुला देना होगा,
देखना होगा एक बृहद रूप में
जिसमें हम एक छोटी-सी
भूमिका अदा कर रहे हैं
जैसे माला में पिरोया हुआ एक मोती

मित्र,
तुम देख रहे हो
कितने परदेशी हैं सड़क पर
हम भी हैं इस भीड़ में, अकेले
पर अकेले नहीं हैं हम उन संभावनाओं
को संजोये हुए इस युद्ध के मैदान में
जिनके लिए हम लड़ रहे हैं
अपनी ज़िन्दगी बनाने और
अपने बच्चों के भविष्य बनाने के लिए
कितने लोग, कितने दु:ख
सभी साथ-साथ और आयाम अलग-अलग

मित्र,
मैं उस शाम को याद करता हूँ
जब एक अकेली लड़की
अपने देश से दूसरे देश में
काम करने के लिए आई थी अकेले, डरी हुई
न भाषा, न रिश्तेदार, न अपने
कुछ भी नहीं था उसके पास
बस थे तो केवल सपने उन पहाड़ों के बीच
उठते धुएँ की तरह जो नीले
आसमान में जाकर विलीन हो जाते हैं
लेकिन ज़मीं पर उनका
उतर कर आना नामुमकिन है
उनकी बुनियाद ज़मीं में नहीं
आसमान पर ही बनती है

उस आसमान में जहाँ
लोगों का भाग्य लिखा रहता है
और इन अजनबी सड़कों पर भी
जहाँ हमारा भाग्य सब लोगों के साथ-साथ
अपने-अपने कर्म से जुड़ा है
जहाँ हम अकेले हैं भीड़ में
और जहाँ हम भीड़ में खड़े हैं
सब लोगों के साथ
जहाँ जब हवा चलती है तो वो सबों के रगों पर
असर करती है, परिंदों के परवाज़ पर भी
जो एक देश से दूसरे देश को उड़ते रहते हैं,

एक महदूद आसमान के नीचे
जिसका सूरज भी हमारे सूरज
की तरह रोशनी देता है
उसे अभी किसी ने बाँटा नहीं
ज़मीने बँट गई लेकिन
आसमान सबों का है
जिसके नीचे हम खड़े हैं

ऐ मित्र,
तुम्हारी तरह
मैं भी अकेला नहीं हूँ
इस युद्ध में
और बहुत सारे लोग हैं
जो अपने-अपने खेमों में
अपने-अपने ज़ख्मों पर
मरहम लगा रहे हैं

कल सूरज के रोशनी दिखाते ही
उसकी पहली किरण के साथ
अपने कवच पहन
अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ
फिर सड़क पर, मैदान में
निकल पड़ना है

ऐ मित्र,
बस इतना समझ लो
हम इस युद्ध में
अकेले नहीं हैं
बहुत सारे लोग
एक बहुत बड़ी सेना
जिसमें अनगिनत सिपाही हैं
जो दिन-रात लड़ते थकते नहीं
हार नहीं मानते
क्योंकि जीवन में जीने के लिए
लड़ाइयाँ लड़नी ही पड़ती हैं :
न दैन्यम न पलायनम अर्जुनस्य प्रतिज्ञम द्वयं।■

स्वदेश राना

भारत में जन्म। चंडीगढ़ विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में स्वर्ण पदक के साथ एम.ए.। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर जवाहर लाल नेहरू यूनिवर्सिटी से पी.एच.डी.। कोलंबिया यूनिवर्सिटी में Rockefeller Award Post-Doctoral Fellow रही हैं। अकादमिक एवं व्यावसायिक उपलब्धियों के लिये अनेकों सम्मान प्राप्त। 'बदली का गिला' ग़ज़ल को अभिव्यक्ति द्वारा 'गोल्डन स्टार' सम्मान, अल्बेनिया के राष्ट्रपति द्वारा 'नेशनल सिम्बोल' प्रदान किया गया। कोलम्बिया एवं जॉन हापकिंग्स विश्वविद्यालयों में शौकिया तौर पर हिन्दी-उर्दू का अध्यापन। लघु उपन्यास 'कोठेबाली' एवं कहानी 'होली' वेब-पत्रिका 'अभिव्यक्ति' पर प्रकाशित। सम्प्रति - संयुक्त राष्ट्र संघ के निरस्त्रीकरण विभाग की पारम्परिक हथियार शाखा की प्रमुख के तौर पर सेवानिवृत्त, वर्ल्ड पॉलिसी इंस्टीट्यूट में सीनियर फैलों हैं एवं समुद्री सुरक्षा परियोजना में सलाहकार।

सम्पर्क : srana641@aol.com

कविता

एक ज़लज़ला

एक ज़लज़ला सा आया
कुछ घर उजड़ गये हैं
कुछ नाम मिट गये हैं
कुछ बुत बिखर गये हैं
बाकी जो अब बचा है
वो मैं हूँ
सिर्फ मैं हूँ
और टुकड़ा-टुकड़ा साबुत
बस एक आईना है

ख़ामोशियों का आदी
अब बेज़ुबान मुख़ातिब
इसरार कर रहा है
मुझे हाथ में उठा लो
फ़कत इक नज़र मिला लो
मुत्तमईन रहो कि तुमको
रुसवा नहीं करूँगा
ना भी छुपाओ चेहरा
पर्दा बना रहेगा
दामन का छोर
अँगुली की नोंक से पकड़ कर
मुझे हाथ में उठा लो,
बस इक नज़र मिला लो

अब हाथ में हैं मेरे
दो टुकड़े आईने के
इक चुभता चौंधियाता
आधे-अधूरे रिश्तों की आबरू बचाता
इक भूले-बिसरे लम्हों के
धुँधलके में छिपकर
सहमा हुआ-सा गुमसुम
ख़ुद से नज़र चुराता

इक ज़लज़ला सा आया
कुछ घर उजड़ गये हैं
कुछ नाम मिट गये हैं
कुछ बुत बिखर गये हैं
बाकी जो अब बचा है
वो सारी ख़ुदाई है
और तुम हो साथ मेरे
इस बस्ती-ये ज़मीन पर

इक टुकड़ा और भी है
शफ़्फ़ाक और सलामत
ख़ुद रंग हाशियों में
सिर्फ़ एक अक्स थामे
इकरार कर रहा है
मुझे देखो या न देखो
मैं हूँ आईना तुम्हारा
न लो हाथ में
मैं फिर भी पहचान हूँ तुम्हारी

ये ज़लज़ले मेरी जान
मेहमाँ हैं ख़ुदाई के
बेनाम हैं बेघर हैं
आते हैं बिन बुलाये
बसते हुए घरों से ख़ैरात माँगते हैं
न यह पीर न नबी हैं
इनसे करम न लेना
इनका भरम न रखना

जब तीरगी की चादर
मुझे थप-थपा रही हो
या बदलियों के झुरमुट
मन्डरा के आसमाँ पर
तुमको अलहदा कर दें
नज़रों के दरीचों से

मुत्तमईन रहो कि तुमको
रुसवा नहीं करूँगा
चाहे छुपा लो चेहरा
या नज़र न मिलाओ
मैं नक़्शे-पा बचाकर
तुम्हें देखता रहूँगा

इक ज़लज़ला सा आया
कुछ घर उजड़ गये थे
कुछ नाम मिट गये थे
कुछ बुत बिखर गये थे
बाकी जो अब बचा है
वो तुम हो और मैं हूँ
और हमसों से वाबस्ता ये सारी ख़ुदाई है। ■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म। अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित। पेशे से इंजीनियर। अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं। सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत।

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

शायरी की बात

घर में हूँ घर ढूंढ रहा हूँ

छोटी बहर की ग़ज़ल कहने की विधा के बड़े उस्ताद विज्ञान व्रत की ग़ज़लों के चार संकलनों में से एक 'बाहर धूप खड़ी है' उनका चर्चित संकलन है।

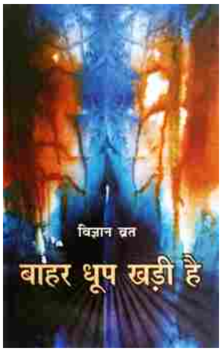

एक जरा सी दुनिया घर की
लेकिन चीजें दुनिया भर की
पापा घर मत लेकर आना
रात गए बातें दफ्तर की

छोटी बहर में बात कहने की एक कठिन तकनीक को विज्ञान जी ने अपने हुनर से वो ऊँचाई प्रदान की है जिस तक पहुंचना एक साधारण शायर के लिए सिर्फ सपना ही हो सकता है। आम भाषा में कहे गए उनके शेर सपाट नहीं हैं बल्कि काव्य की गहराई लिए हुए हैं।

कोई रस्ता बेहतर ढूंढो
खुद को अपने अन्दर ढूंढो
सुबह मिले ना सिलवट जिसमें
ऐसा कोई बिस्तर ढूंढो
सिर्फ इमारत बनवाई है
इसमें घर का मंज़र ढूंढो

'अयन प्रकाशन' दिल्ली ने विज्ञान व्रत जी की ग़ज़लों की चारों पुस्तकों 'बाहर धूप खड़ी है', 'चुप की आवाज़', 'जैसे कोई लौटेगा' और 'तब तक हूँ' के अलावा दोहा संकलन 'सप्तपदी' का भी प्रकाशन किया है।

जब घर में हों सब मेहमान
कौन करे किसका सम्मान
बढ़ता जाता है सामान
छोटा होता घर दालान

प्रतिभाशाली व्यक्ति को सम्मानित करने से सम्मान की गरिमा बढ़ती है। विज्ञान जी पर सम्मान और पुरुस्कारों की बारिश सी हुई है : वातायन (लन्दन), समन्वय (सहारनपुर), सुरुचि (गुडगाँव), परम्परा (बिजनौर), कंवल सरहदी (मेरठ) आदि संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित किया है और उत्तरप्रदेश की राज्य ललित कला अकादमी ने उन्हें पुरुस्कृत किया है। विज्ञान जी की ग़ज़लों को प्रसिद्ध ग़ज़ल गायक जगजीत सिंह, धनञ्जय कौल और निशांत अक्षर अपना स्वर दे चुके हैं। उनकी ग़ज़लों का एक अल्बम 'चुप की आवाज़' बाज़ार में उपलब्ध है।

रोशन सारा घर अन्दर से
लेकिन ताला है बाहर से
सो जाने तक बच्चे तरसे
तब लौटे पापा दफ्तर से

विज्ञान जी का ईस्ट आफ कैलाश में स्टूडियो है और वो स्वयं नोएडा (यूपी) के सेक्टर २५ में रहते हैं। एक दिलचस्प बात ये भी जान लीजिये कि उन्हें अभिनय का शौक भी है। इसी के चलते उन्होंने टीवी धारावाहिक 'वापसी' के लिए गीत भी लिखे और अभिनय भी किया।

> घर को लेकर विज्ञान व्रत ने अद्भुत शेर कहे हैं ये घर इस मायने में अनेकार्थी हैं जिसमें अपने समय में बिखरती जा रही घर की सम्वेदनाओं से लेकर वसुधैव कुटुम्बकम के निरंतर छीजते जाते हुए एहसास का स्पंदन दिखाई देता है।

इस किताब में ७४ ग़ज़लें तो पढ़ने को मिलेंगी ही साथ ही विज्ञान जी के बनाये कुछ दुर्लभ रेखाचित्र भी दिखाई देंगे। विज्ञान जी के बारे में विस्तार से आप उनकी वेब साईट http://vigyanvrat.com पर जाकर पढ़ सकते हैं।

ऊंचे लोग सयाने निकले
महलों में तहखाने निकले
आहों का अंदाज़ नया था
लेकिन ज़ख्म पुराने निकले
जिनको पकड़ा हाथ समझ कर
वो केवल दस्ताने निकले ■

सिओल में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन-२०१४ सम्पन्न

१३ से १५ मार्च २०१४ तक हन्गुक युनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरिन स्टडीज़, सिओल, दक्षिण कोरिया में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन आयोजित किया गया। इस तीन दिवसीय सम्मेलन का आयोजन विदेश मंत्रालय, भारत सरकार और भारतीय दूतावास, सिओल के सहयोग से किया गया। सम्मेलन का उद्देश्य ऑस्ट्रेलिया, चीन, जापान, भारत और कोरिया समेत समस्त एशिया प्रशान्त क्षेत्र में हिन्दी भाषा के शिक्षण और अध्यापन को बढ़ावा देना था। दो दिन के पांच अकादमिक सत्रों में कुल अठारह आलेख पढ़े गए।

उद्घाटन समारोह का सञ्चालन भारत अध्ययन विभाग से प्रोफ़ेसर लिम गन दोंग ने किया। सिओल से कुछ दूर हन्गुक यूनिवर्सिटी के ग्लोबल परिसर योंगिन में आयोजित सम्मलेन में स्वागत भाषण विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफ़ेसर किम इन छल ने दिया। उद्घाटन संबोधन दक्षिण कोरिया में भारत के राजदूत महामहिम श्री विष्णु प्रकाश जी ने दिया। हिन्दीसेवी सम्मान प्राप्तकर्ता और विभाग के प्रोफ़ेसर एमेरिटस प्रोफ़ेसर ली जंग हो ने 'भारत और हिन्दी की याद' शीर्षक स्मृति चित्र प्रस्तुत किया।

पहले अकादमिक सत्र में चार वक्ता थे। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति श्री विभूतिनारायण राय ने 'विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी पढ़ाने में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय का योगदान' शीर्षक आलेख पढ़ा।

ऑस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी से प्रोफ़ेसर पीटर फ्रीडलैंडर ने 'ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी : अतीत, वर्तमान और भविष्य' शीर्षक अपने आलेख की पावर पॉइंट प्रस्तुति में ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी शिक्षण के ऐतिहासिक विकास क्रम को स्पष्ट करते हुए विदेशी भाषा के रूप में हिन्दी अध्यापन के लिए टास्क बेस्ड लर्निंग, ऑडियो-लिंगुअल और कम्यूनिकेटिव स्टाइल ऑफ़ टीचिंग की अवधारणा को रेखांकित किया। तीसरी वक्ता के रूप में हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फोरेन स्टडीज़ से प्रोफ़ेसर विजया सती ने अपने आलेख 'बुदापैश्त में हिन्दी अध्यापन : कुछ स्मृतियाँ' में ऐलते विश्वविद्यालय, बुदापैश्त में अपने अध्यापन काल के अनुभव साझा किए। सत्र की अंतिम वक्ता हन्गुक यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ़ॉरन स्टडीज़ की प्रोफ़ेसर किम ऊ जो ने 'दक्षिण कोरिया में हिन्दी शिक्षण : ४० वर्ष का सफ़र' शीर्षक अपने आलेख में कोरिया में हिन्दी शिक्षण के विकास को विस्तार सहित प्रस्तुत किया।

दूसरे अकादमिक सत्र में विषय रखा गया था 'हिन्दी एवं उसका विकास'। अध्यक्षता एवं संचालन प्रो. छोई जोंग छन ने किया। प्रथम वक्ता के रूप में चीन के शिआन इन्टरनेशनल स्टडीज़ विश्वविद्यालय से आए प्रो. गे फुपिंग ने 'भारतीय लोगों का सांस्कृतिक मनोविज्ञान और हिन्दी व्यवहार की विशेषताएं' शीर्षक से आलेख पढ़ा। हन्गुक विश्वविद्यालय से डॉ. क्षिशतोफ इवानेक ने 'विद्या भारती स्कूलों में हिन्दी भाषा अध्यापन' पर आलेख पढ़ा। हन्गुक विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग से प्रो. हृदयनारायण के आलेख का शीर्षक था 'हिन्दी और राष्ट्रवाद'।

दूसरे दिन तीसरे अकादमिक सत्र में हन्गुक विश्वविद्यालय से प्रो. लिम गन दोंग ने 'हिन्दी शिक्षण में संस्कृत शिक्षा का योगदान', जापान के दाइताबुंका विश्वविद्यालय से प्रो. हिदेआकी इशिदा ने 'हिन्दी शिक्षण में लोककथाओं की उपयोगिता', दिल्ली विश्वविद्यालय से डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी ने 'हिन्दी साहित्य शिक्षण में तुलसीदास की उपयोगिता' और पेकिंग विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई अध्ययन केंद्र के निदेशक प्रो. जियाँग कुई ने 'भारतीय ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद' शीर्षक आलेख पढ़े।

चौथे अकादमिक सत्र में पहला आलेख प्रो. फुजिइ ताकेशी ने प्रस्तुत किया जो तोक्यो यूनीवर्सिटी ऑफ़ फोरेन स्टडीज़ से थे, शीर्षक था - 'डिजिटल युग में हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन'। हन्गुक विश्वविद्यालय के प्रो. ली उन गू ने 'हिन्दी फ़िल्मी गीतों के माध्यम से हिन्दी शिक्षण' विषय पर अपने विचार रखे। प्रो. रामबक्ष के आलेख का शीर्षक था 'भूमंडलीकरण और हिन्दी का अध्ययन'। पांचवें अंतिम सत्र में प्रथम वक्ता केन्द्रीय हिन्दी संस्थान भारत से प्रो. मोहन ने 'हिन्दी सीखने वाले कोरियाई विद्यार्थियों का अधिगम-व्यवहार और अपेक्षाएं' शीर्षक से अपनी बात कही। ओसाका विश्वविद्यालय जापान से प्रो. चिहिरो कोइसो ने 'हिन्दी शिक्षा में पढ़ने वालों की अभिप्रेरणा कैसे बढ़नी चाहिए' विषय पर संवाद किया। खो थे जीन बुसान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से थे जिन्होंने 'कोरिया में हिन्दी : अध्यापन एक अनुभव' शीर्षक से वक्तव्य दिया। प्रो. हू रुई ग्वांगदोंग विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय चीन से आए थे और उन्होंने 'अभाव पूर्ति सिद्धांत की दृष्टि से हिन्दी शिक्षा पर कुछ विचार' प्रस्तुत किए।

सम्मलेन के समापन समारोह की अध्यक्षता और संचालन हन्गुक विश्वविद्यालय से प्रो. किम ऊ जो ने किया, जिसमें पहले सभी अकादमिक सत्रों की संक्षिप्त रिपोर्ट प्रो. मोहन और प्रो. पीटर फ्रीडलैंडर ने प्रस्तुत की। समापन वक्तव्य उपसचिव, विदेश मंत्रालय, श्रीमती सुनीति शर्मा और भारतीय दूतावास सिओल के भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की निदेशक निहारिका सिंह ने दिया।■

प्रस्तुति : विजया सती

खबर

न्यूयॉर्क में होली के अवसर पर रंगा-रंग कवि सम्मेलन

होली के अवसर पर २२ मार्च, २०१४ को फ्लशिंग, न्यूयॉर्क में हिंदू सेंटर मन्दिर के प्रांगण में अखिल विश्व हिन्दी समिति द्वारा भव्य कवि सम्मेलन का आयोजन डॉ. विजय मेहता द्वारा किया गया। अखिल विश्व हिन्दी समिति अपने विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में निरंतर कार्यरत है कार्यक्रम का शुभारम्भ श्रीमती मीता भास्कर ने एक भजन सुनाकर और श्रीमती पूर्णिमा देसाई जी ने सरस्वती वंदना से किया। कार्यक्रम का आयोजन होली के उपलक्ष्य में किया गया था इसलिए कविता पाठ से पहले सभी आमंत्रित अतिथियों को ठंडाई और पकोड़ों का अल्पाहार प्रदान किया गया। कार्यक्रम में भाग लेने वाले मुख्य आमंत्रित थे - श्री आशारामजी, अशोक सिंह, श्रीमती नीना वाही, बॉस्टन, डॉ. गोपाल शर्मा, डॉ. पुरोहित, श्री अनिमेष, श्रीमती रजनी कुमार, अफगानिस्तान, प्रो. श्याम नारायण खेड़ा, श्रीमती पूर्णिमा देसाई, श्रीमती सुषमा मल्होत्रा, डॉ. मंगला, श्री आनंद आहूजा, डॉ. रजनी, श्री किंग रोबर्ट ब्रूस, न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के छात्र, श्रीमती पुष्प मल्होत्रा, श्री गिरीश वैध, श्री करुण गुप्ता, डॉ. कमल किशोर सिंह, भोजपुरी, श्री परमेन्द्र मिश्रा, श्री अवतार सिंह, पंजाबी, डॉ. विजय मेहता इत्यादि। हिन्दी भाषा के विकास के लिए हो रहे इस सम्मेलन की उल्लेखनीय बात यह थी कि हिन्दी के अलावा भोजपुरी और पंजाबी भाषा में कविता पाठ करने के लिये न्यूयॉर्क के बाहर से भी कलाकार आमन्त्रित थे।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. बिन्देश्वरी अग्रवाल के सुपरिचित हास्य विनोद से सजीव बना रहा। मन्दिर का हॉल दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। दर्शक मंत्रमुग्ध होकर कार्यक्रम का आनंद ले रहे थे, तालियों और ठहाकों से हॉल बराबर गूंज रहा था। बिन्देश्वरीजी एक अच्छी संचालिका होने के अलावा एक अच्छी कवियत्री भी हैं। उन्हें हाल ही में अपनी कविता के लिए मॉरिशस की काव्य प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

कार्यक्रम के संचालन में मन्दिर के कार्यकर्ता डॉ. दीक्षित जी और उनके सहयोगिओं ने पूर्ण रूप से सहयोग प्रदान किया। कार्यक्रम के दौरान श्री दिलीप चौहान ने अखिल विश्व हिन्दी समिति को डॉ. बिन्देश्वरी अग्रवाल और डॉ. बिजय मेहता को हिंदी भाषा के प्रचार के लिए न्यूयॉर्क के सीनेट श्री टोनी एन द्वारा सम्मान पत्र प्रदान किये।

इस अवसर पर डॉ. मंगला द्वारा लिखे गए काव्य ग्रन्थ, मंगलम् का डॉ. बिजय मेहता द्वारा विमोचन किया गया।■

प्रस्तुति - श्रीमती नीना वाही

60 MILLION
CHILDREN IN INDIA
have no means to go to school

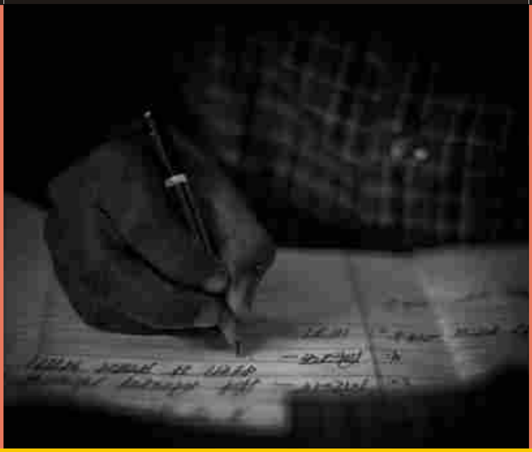

Contribute just Rs. 2750*
and send one child to school
for a whole year

Central & General Query
info@smilefoundationindia.org
http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

गर्भनाल के हर एक अंक का हर एक लेख प्रभावी है, शिक्षाप्रद है और हिन्दी जगत के लिए एक प्रेरणा स्रोत है। आशा करता हूँ ये मेरी तरह और सभी लोगों को भी उतना ही पसन्द आता होगा।

अचल वर्मा, पेन्सिल्वानिया, अमेरिका

गर्भनाल का ताजा अंक प्राप्त हुआ। मैं गर्भनाल की पुरानी पाठिका हूँ। इसमें प्रकाशित लेख दिलचस्प व ज्ञानवर्धक होते हैं। विदेशों में रहने वाले हिन्दी प्रेमियों के लिए आपकी यह साहित्यिक सेवा सराहनीय है। यूरोप में हिन्दी पढ़ाना निश्चय ही एक सुखद अनुभूति है। गर्भनाल के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना अदा करती हूँ ।

पी.के. जयलक्ष्मी, सोफ़िया, बुल्गेरिया

गर्भनाल-८८ के जबर्दस्त अंक के लिए हार्दिक धन्यवाद। डॉ. दिनेश श्रीवास्तव का लेख 'ऑस्ट्रेलिया में हिंदी' पढ़ने में अति शिक्षाप्रद था। हिंदी की मान्यता के लिए उनके दृढ़ निश्चय व कठोर परिश्रम से ही आज स्कूलों में हिंदी का अध्यन आरम्भ हुआ। यशवंत कठोरी का संस्मरण 'ओह अमेरिका,वाह!' पढ़कर अमेरिका के रहन-सहन का अनुभव हुआ। आशा है यों ही ज्ञानार्जन में वृद्धि करने वाले लेख हमें सदा पढ़ने को मिलते रहेंगे।

सुमन वर्मा, मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया

गर्भनाल के मार्च-२०१४ अंक में सुधा दीक्षित जी की रम्या रचना 'भानुमती का कुनवा' बहुत ही मजेदार है। इसमें हिन्दी साहित्य, उर्दू शायरी, बोलचाल की अँग्रेजी, राजनीति, हास्य रस सभी का समन्वय है। श्री ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव जी का चिन्तन 'ज्योतिष की दशा और दिशा' ज्ञानवर्धक है। सभी स्थायी स्तम्भ भी अपनी-अपनी जगह सकुशल सँजोये गए है।

आशा मोर, त्रिनिदाद

"मन की बात - में डॉ. अमरनाथ ने हिन्दी और उसकी बोलियों की शक्ति और व्यापकता को सोदाहरण समझाया है। चीन की डायरी - में रोचक प्रसंग है। नज़रिया, नीरज गोस्वामी का ग़ज़लों का लेख भी अच्छा लगा। आख़िरी बात - में भी खरी किन्तु रोचक बात कही गई है। रम्य-रचना - विशेष रूप से मन को भायी।"

गर्भनाल का ८८वाँ अंक प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। उसे खोलना था कि पढ़ने में ही जुट गई। फिर पूरा पढ़ कर ही छोड़ सकी। सभी लेख एक से बढ़कर एक हैं। किस-किस की प्रशंसा करूँ?

मनोज कुमार श्रीवास्तव जी का आलेख सदा की भाँति ज्ञानवर्धक तथा भक्तिभाव से भरा है। साथ ही उनके हिन्दी, संस्कृत, पाली एवं अंग्रेज़ी के व्यापक ज्ञान का परिचायक भी है। गंभीर और जिज्ञासा को शान्त करने वाला है। ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी लेख से काफ़ी जानकारी मिलती है। कोठारी जी का संस्मरण 'वाह अमेरिका...' भी रोचक और वर्णनात्मक है। अपनी बात - एक सार्थक और सशक्त लेख है। लेखक ने वरिष्ठ नागरिकों की सामयिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला है।

मन की बात - में डॉ. अमरनाथ ने हिन्दी और उसकी बोलियों की शक्ति और व्यापकता को सोदाहरण समझाया है। चीन की डायरी - में रोचक प्रसंग है। नज़रिया, नीरज गोस्वामी का ग़ज़लों का लेख भी अच्छा लगा। आख़िरी बात - में भी खरी किन्तु रोचक बात कही गई है। रम्य-रचना - विशेष रूप से मन को भायी। सुधा जी ने बड़े कौशल से आज की राजनीति और चुनावी सरगर्मी को चित्रित किया है। धारदार तेवर होते हुए भी, सत्य तथ्यों पर शेरो-शायरी के प्रयोग से हास्योद्रेक करते हुए आलेख को सच्चे अर्थों में रम्य-रचना का रूप दिया है। उनका साधुवाद! कविताएँ सभी अच्छी हैं किन्तु आशा मोर जी की 'टेसू का पुष्प' कविता एक ताज़ी हवा के झोंके का सा स्पर्श दे गई। मेरे 'बसन्त' और 'होली के गीत' को इतने सुन्दर से चित्र से सुसज्जित करके प्रकाशित करने के लिये आभार! स्थायी स्तम्भ सदा की भाँति पठनीय तथा रोचक हैं। कुल मिलाकर ये अंक विशेष रूप से प्रशंसनीय है, सामग्री के चयन और प्रकाशन में सम्पादन-कौशल सराहना के योग्य है।

शकुन्तला बहादुर, कैलिफ़ोर्निया

गर्भनाल का ८८वाँ अंक प्राप्त हुआ। पढ़ा, बहुत सुन्दर है। 'एक दिन चुग जा आकर गौरेया' ने मुझे मेरी बचपन की याद दिला दी। मेरे गाँव के आँगन में शाम होते ही पेड़ों पर इनका चहचहाना याद है। पर न जाने क्यों अब सभी कहाँ गयीं। अब तो शाम को एक भी चिड़िया दिखायी नहीं देती।

गर्भनाल जैसे कार्य के लिये आप सभी को शुभकामनाएँ।

गायत्री साहू, मुंबई

गर्भनाल का ताजा अंक भेजने के लिये आभार। संस्मरण हमेशा पढ़ने में आनंद आता है। अभी शाम को तसल्ली से एक-एक पन्ना पढ़ूंगा।

हरमिन्दर सिंह

गर्भनाल-८८ अंक को थोड़ा ही पढ़ पाया और दो शब्द लिखे बिना नहीं रहा गया। हिंदी की बोलियों को स्वतंत्र संवैधानिक मान्यता देकर हिंदी को ही कमजोर करने के सम्बन्ध जो चिंता व्यक्त की गई है वह आँख खोलने वाली है। यह तो एक उदाहरण है।

गर्भनाल को मैं हिंदी की श्रेष्ठतम पत्रिकाओं में स्थान देता हूँ। संकल्प और कालगणना की जो जानकारी दी गई है वह हमें समृद्ध तो कर ही रही है साथ ही चेतावनी भी दे रही है कि भारतीय मनीषा को हम भूलते जा रहे हैं।

रमेश तैलंग

गर्भनाल मार्च २०१४ अंक में मेरी कविता प्रकाशित की गयी है। देखकर बहुत अच्छा लगा। गर्भनाल पत्रिका से मैं काफी समय से जुड़ी हुई हूँ। उमेश तांबी जी के सौजन्य से हर अंक समय पर उपलब्ध हो जाता रहा है। सभी रचनाएँ सुंदर होने के साथ-साथ आपके ओजमयी और मन को आंदोलित करने वाले उच्च विचार जानने का मौका मिलता रहा है। सुदूर देश में बैठे सभी भारतीयों को बौद्धिक और आत्मिक रूप से एक सूत्र में जोड़ने का आपका यह प्रयास बेहद सराहनीय है। सहृदय धन्यवाद।

विनीता खंडेलवाल

आपकी स्तरीय पत्रिका गर्भनाल नियमित रूप से प्राप्त होती है और इसकी पठनीयता उल्लेखनीय है।

अन्तरा करवडे

Hope you are doing well. Thank you for sharing the Garbhanal latest issue. I really appreciate it.

I have a question to ask, can you accept a hand written story for the magazine that I can send you via a mail? I have a very neat hand writing. I wrote one on a very powerful topic that I wanted to get published in a magazine that is read outside India also. Garbhanal seems to be a right magazine. Best regards,

Farah

"गर्भनाल की सभी कविताओं का चित्ररूपांकन कविताओं के भाव पक्ष को ब-खूबी उजागर करता है। इस हेतु कला डिजाइनर डॉ. ब्रजेश तिवारी की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है। भाव और चित्र इन दोनों में एक प्रकार से होड ही लग गयी है कि कौन किससे बेहतर है।"

गर्भनाल की आतुरता से प्रतीक्षा रहती है। साहित्य की विभिन्न विधाओं को समेटे हर अंक रोचक और पठनीय होते हैं। पत्रिका के कलेवर और आवरण पृष्ठ के चित्र आकर्षक लगते हैं।

हिमकर श्याम

मार्च-२०१४ का गर्भनाल का अंक प्राप्त हुआ। जिसके लिए धन्यवाद। हमेशा की तरह इस बार का अंक भी पठनीय रहा। कविताएं भी यकीनन बहुत अच्छी हैं। होली की झलक भी किसी-किसी में दिखाई दे रही है। अपने व्यस्त समय में से आपकी पत्रिका पढ़ने के लिए वक्त निकाल ही लेती हूँ। इसी प्रकार फरवरी-२०१४ के अंक में ललिता प्रदीप जी की कविता 'पिता कभी नहीं मरते' बहुत पसंद आई। यह अंक भी प्रसंशनीय, सराहनीय एवं संग्रहणीय है। होली की शुभकामनाओं के साथ कुशल संपादन हेतु बधाई स्वीकारें। पत्रिका की उज्ज्वल भविष्य की अशेष शुभकामनायें।

कीर्ति श्रीवास्तव, भोपाल

गर्भनाल की सभी कविताओं का चित्ररूपांकन कविताओं के भाव पक्ष को ब-खूबी उजागर करता है। इस हेतु कला डिजाइनर डॉ. ब्रजेश तिवारी की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है। भाव और चित्र इन दोनों में एक प्रकार से होड ही लग गयी है कि कौन किससे बेहतर है।

मन स्थिरता चाहता है। बाहर के परिवर्तनों से मन अस्थिर हो उठता है जबकि परिवर्तन ही जीवन है - आत्माराम शर्मा ने इसे बिना किसी दार्शनिक भूमिका के सहज ही आख़िरी बात में व्यक्त किया है जो अच्छा लगा। नियमित रूप से पत्रिका भेजने के लिए आभारी हूं। धन्यवाद।

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर

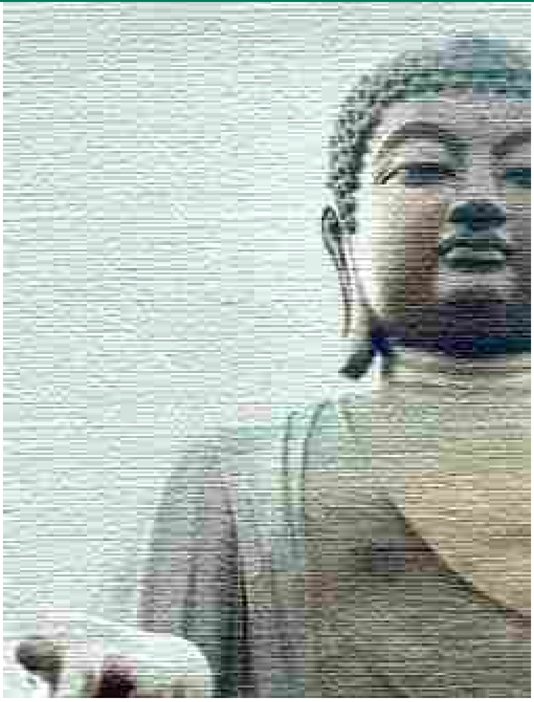

जो दूसरों से ईर्ष्या करता है, उसे मन की शांति नहीं मिलती।

- गौतम बुद्ध

औघड़ उवाच - जीवन में बुरे लोगों का संग और सामना नहीं करना चाहिए।

चेला - लेकिन गुरुवर यह तो एक आदर्श स्थिति है। अगर 'दुष्ट संग जनि देई विधाता' वाली स्थिति का सामना करना पड़ जाये तब ?

औघड़ - तब अपने भीतर के सदाशयी व्यक्तित्व को उजागर करें।

चेला - तनिक खुलासा करें गुरुदेव।

औघड़ - बुरे लोगों का सामना दो तरीके से किया जा सकता है। या तो उन्हीं की तरह बुरा बनकर या फिर अपनी अच्छाई को और बढ़ाकर।

चेला - पहला तरीका तो समझ गया महाराज। दूसरे तरीके से यह आशय निकालूं कि एक गाल पर थप्पड़ खाकर दूसरा गाल भी आगे कर दूं।

औघड़ - ऐसा बरताव तो विरले ही कर पाते हैं।

चेला - गुरूजी, तो फिर हमें हमारी ओछी औकात के मुताबिक ही राह दिखाएँ।

औघड़ - कभी-कभी बुराई ऐसी शक्ल में आती है कि हम उसे पहचान ही नहीं पाते। जैसे एक बुराई है ईर्ष्या करना। अक्सर ही हमारी ज़िंदगी में ईर्ष्यालु लोग आ जाते हैं। कई बार इन्हें आपकी प्रगति से कुछ भी लेना-देना नहीं होता, आप उनके लिए हानिकारक भी नहीं होंते, फिर भी आपके प्रति उनके मन में ईर्ष्या सक्रिय हो उठती है।

चेला - आज का दौर तो ऐसा है कि 'मारे भी और रोने भी न दे।' दुनियाभर के अनगिनत मन बहलाव के साधनों के बावजूद भी भाई लोगों को पर-पीड़ा में मज़ा आता है। इन 'बैर अकारण हर काहू से' टाइप के लोगों से कैसे निपटें।

औघड़ - पहले तो इन्हें अनदेखा करें। इससे भी काम न चले तो इनके प्रति खूब उदार हो जाएँ। मन फिर भी शान्त न हो तो फिर इन्हें लेकर स्वयं को परेशान महसूस न करें। मान लें कि इस दौर में हमारे भाग्य में अपयश और ईर्ष्या ही लिखी-वदी है। अपनी उदारता के भाव को बरकरार रखने की कोशिश करते रहें और थोड़ा भाग्य पर भरोसा रखें। इस बहस में न पड़े कि कितना कर्म और कितनी किस्मत। ईर्ष्या करने वालों को ईर्ष्या करने दें। हम अपने सौभाग्य के प्रति आगे बढ़ते रहें। उनके प्रति शत्रुता और बैर न पालें। वरना हमारे व्यक्तित्व में कुटिलता आ जाएगी। यदि हम चूकें तो ईर्ष्यालु व्यक्ति कुछ समय बाद हमें उनके ही जैसा बना लेंगे और यह उनकी जीत हो न हो, हमारी हार जरूर बन जाएगी। इसलिए उनकी ईर्ष्या को अपनी उदारता से समाप्त करें।

चेला - यह कलियुग है गुरुदेव! बरताव में संतों जैसी सरलता आना सरल नहीं है। हाँ भरोसे का भ्रम बना रहे इस बाबत 'इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो ना' जैसी प्रार्थना तो सच्चे मन से गायी ही जा सकती है। ऐसा करने से कुछ और हो न हो जी तो जुड़ा ही जायेगा।

atmaram.sharma@gmail.com